H.A. 292

आकृतिसे रोगकी पहचान

L181
15219

लुई कूने द्वारा लिखित

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

279
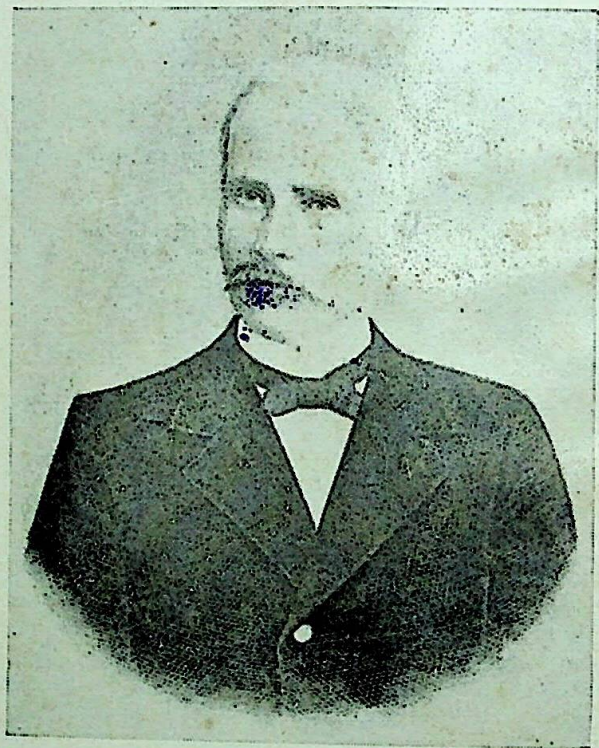
लुई कूने

आकृतिसे

रोगकी पहचान

प्राकृतिक चिकित्साके विशेषज्ञ लूई कूनेकी लोकोपयोगी पुस्तक
का हिंदी-रूपान्तर

रूपांतरकार
महाबीरप्रसाद पोद्दार

१९७९

सस्ता साहित्य-मण्डल प्रकाशन

प्रकाशकीय

लूई कूने विश्वके उन प्राकृतिक चिकित्सा-विशेषज्ञोंमेंसे थे, जिन्होंने अनगिनत व्यक्तियोंको न केवल दवाओं और डाक्टरोंके चक्करसे बचाया, अपितु उन्हें स्वस्थ रहने तथा बीमार पड़नेपर अपनी चिकित्सा आप करनेकी प्रेरणा दी।

प्राकृतिक चिकित्साके संबंधमें उन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं, जिन्होंने बहुत-से पाठकोंको प्रभावित किया है। उन्होंने प्राकृतिक चिकित्साकी श्रेष्ठता, उपयोगिता तथा प्रामाणिकताको सिद्ध किया। उनकी चिकित्सा-पद्धति तथा उनकी पुस्तकोंके महत्वके संबंध में कुछ महापुरुषोंकी राय सुन लीजिये।

महात्मा गांधी :

बहुत अधिक लोगोंपर प्रयोग करके डा० लूई कूने इस परिणामपर पहुंचे कि सब तरहके रोगोंमें पानीके दो-तीन प्रकारके (कटि, मेहन और भाप) स्नानोंसे लाभ पहुंचता है।

वह सारी बीमारियोंकी जड़ मेदेको बतलाता है। मेदेमें ज्वर होनेपर शरीरके बाहरी भागों पर फोड़े-फुंसी, सूजन तथा अन्य रोग प्रकट होते हैं। वही गरमी बाहर निकलकर सारे शरीरको गरम कर देती है। जल-चिकित्सापर डा० लूई कूनेसे पहलेके एक लेखककी 'जल-चिकित्सा' नामक एक बहुत पुरानी पुस्तक है। पर लूई कूनेके पहले किसीने रोगोंकी एकतापर इतना जोर नहीं दिया था और न यही बतलाया था कि सारी बीमारियोंकी जड़ मेदा (मेदेकी खराबी—अपच) है। हमें लूई कूनेके मतको सर्वांशमें सही मान लेनेकी जरूरत न होनेपर भी इतना निश्चित है कि उनके विचार और उपचार अनेकानेक रोगोंमें सही साबित हुए हैं। डरबन के स्व० मजिस्ट्रेट मि० ट्रीटन धनुर्वातके कारण अपाहिज हो गए थे। बहुत इलाजोंसे हार चुकनेपर वह लूई कूनेके यहां

(लिपजिग) जाकर चंगे हुए। वहांसे लौटकर वह लोगोंको हमेशा लूई कूनेके उपचारोंके प्रयोगकी सलाह दिया करते थे।

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद :

मैंने कई महीनों तक लूई कूनेकी जल-चिकित्सा-पद्धतिसे कटिस्नान करके कुछ लाभ उठाया था। उनकी अंग्रेजी पुस्तक भी पढ़ी थी। उनसे मिलनेकी इच्छाके कारण मैंने अपने यूरोपके यात्राक्रममें लिपजिगको रखा था। स्टेशनसे सीधे उनके चिकित्सालयमें गया। वहां सुना कि लूई कूनेकी मृत्यु हो चुकी है। वह फल खानेके बड़े पक्षपाती थे। अवस्था काफी होनेपर भी पेड़पर फल तोड़ने चढ़े थे और गिरकर गहरी चोट खा गए और मर गए। उनके लड़केसे भेंट हुई। पर वह अंग्रेजी नहींके बराबर जानते थे। किसी प्रकार बातें हुईं। उन्होंने मेरे लिए स्नान तथा भोजनादिका एक नुस्खा लिख दिया। एक बार स्नान कराकर भी दिखा दिया।

प्राकृतिक चिकित्सा-सम्बन्धी अनेक नामी ग्रन्थों (नेचर क्योर, प्रेक्टिस ऑव नेचर क्योर, आदि) के लेखक तथा अमरीकाके सुविख्यात प्राकृतिक चिकित्सक डा० लिंडलहार, एम० डी० :

प्राकृतिक चिकित्साके सिद्धांतोंसे परिचित होनेके लगभग छः महीने बाद ही मैं अपनी सारी संपत्ति बेचकर और कारोबार समेटकर सकुटुंब लूई कूनेके चिकित्सालयमें जा पहुंचा। वहां मेरे स्वास्थ्यमें इतनी अधिक उन्नति हुई और मैंने ऐसी आश्चर्यजनक बातें प्राकृतिक चिकित्साके संबंधमें अनुभव कीं कि मेरे दिमागमेंसे प्राकृतिक चिकित्साको छोड़कर और सब बातें जाती रहीं।

बेनेडिक्ट लुस्ट (एन. डी. डी., ओ. डी. सी., एम. डी.) अमरीका, संपादक, यूनिवर्सल नेचरोपैथी इन्साइक्लोपीडिया (सन् १९१९) :

लूई कूनेकी 'रोगों की नई चिकित्सा' (न्यू साइंस ऑव हीलिंग) सयुक्तिक, सप्रमाण (अटकल-पच्चू नहीं) चिकित्साके बुनियादी सिद्धांतोंको प्रकट करनेवाली सर्वोत्तम पुस्तक मानी जायगी।

कूने संसारको निदानका सर्वोत्तम तर्क-पूर्ण विचार देनेवाला और रोगों तथा उपचारकी एकता बतलानेवाला सर्वप्रथम मनुष्य था। उसकी

'आकृतिसे रोगकी पहचान' (साइंस ऑव फेशल एक्सप्रैशन) पुस्तक हमें रोगीकी दशाका और उसके शरीरमें मौजूद दोष-संचय का ज्ञान करानेवाली एकमात्र पुस्तक है। वह प्राकृतिक चिकित्साका संस्थापक और प्रथम शिक्षक था।

हिन्दी-साहित्यके महारथी, 'सरस्वती'-संपादक, स्व०पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, 'जल-चिकित्सा' के संक्षिप्त संस्करणकी भूमिकामें :

इस पुस्तकके उदाराशय, परोपकार-मूर्ति महात्मा लेखक का नाम लूई कूने है। इनकी बताई जल-चिकित्सा से मानव-जातिको जो लाभ पहुंच रहा है और जो पहुंचेगा, उसकी सीमा स्थिर नहीं की जा सकती। मृत्यु-मुखके निकट पहुंचते हुए मनुष्य भी इस चिकित्सासे अनंत लाभ प्राप्त करते हैं। यह चिकित्सा बहुत ही सीधी है।

वाइटैलिटी, फ़ास्टिंग एण्ड न्यूट्रीशन तथा फ़िजीकल फिलॉमेना ऑव स्पिरिचुअलाइजेशन आदि सुप्रसिद्ध पुस्तकोंके लेखक तथा अमरीकी साइंटिफिक रिसर्च इन्स्टीट्यूटके सदस्य हीयर वर्ड कैरिंगटन :

मैंने कूनेकी आकृति-विज्ञानके अनुसार अनेक रोगियोंका निदान किया और उसे सही पाया।

प्रस्तुत पुस्तक इन्हीं महानुभावकी 'साइंस ऑव फेशल एक्सप्रैशन'का हिन्दी-अनुवाद है। इस पुस्तकमें बताया गया है कि रोगियोंके शरीरके विभिन्न अंगोंमें जो दोष संचित होता है, उसे देखकर रोगका निदान सहज ही किया जा सकता है। अपनी इस बातको उन्होंने बड़े ही वैज्ञानिक ढंगसे समझाया है और अनेक चित्रों की सहायतासे स्पष्ट किया है।

इस पुस्तकसे प्रत्येक व्यक्तिको अपने शरीरको और यदि उसमें कोई रोग है तो उसे समझनेमें बड़ी मदद मिलती है। इस दृष्टिसे यह पुस्तक सबके कामकी है।

बड़े हर्षकी बात है कि इसका अनुवाद उन सज्जनने किया है, जो स्वयं बहुत ही कुशल प्राकृतिक चिकित्सक हैं। उनकी लेखन-शैली अनूठी है। इस पुस्तकको पढ़कर ऐसा लगता है, मानो वह मूल हिन्दीमें ही लिखी गई हो।

। इस मालामें अवतक निम्न पुस्तकें निकल चुकी हैं—

१. प्राकृतिक चिकित्सा—क्या व कैसे ?; २. नवीन चिकित्सा; ३. सरल योगासन; ४. प्राकृतिक जीवनकी ओर; ५. प्राकृतिक चिकित्सा-के चमत्कार; ६. नीरोग होनेका सच्चा उपाय; ७. आकृतिसे रोगकी पहचान।

इन पुस्तकों के सभी वर्गों के पाठकों ने बड़े चाव से पढ़ा है और लाभ उठाया है।

पुस्तक के पहले दो संस्करण बहुत पहले समाप्त गये थे। उसकी मांग बराबर बनी हुई थी। बड़े संतोषकी बात है कि अब नया संस्करण प्रकाशित हो रहा है। हमें विश्वास है कि पाठक इस संस्करणको उसी चाव से पढ़ेंगे।

—मंत्री

भूमिका

महापुरुष लूई कूनेकी जन्मतिथि तथा वर्षका कोई पता नहीं लगता, न उनके माता-पिताके बारेमें ही विशेष कुछ मालूम हो सका। वह जर्मनीके लिपज़िगमें हुए थे। अपनी 'रोगों की नई चिकित्सा' नामक पुस्तकमें उन्होंने बीस सालकी उम्रमें अपने बीमार पड़ने और तदर्थ सन् १८६४ में वहांके प्राकृतिक चिकित्सकोंके संपर्कमें आनेकी बात कही है। इस प्रकार उनका जन्म सन् १८४० के आसपास माना जा सकता है।

उस समयकी प्रचलित प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीसे पूरा लाभ न होनेपर कूनेने जल-चिकित्साकी अपनी नई विधि निकाली। उससे स्वयं पूर्ण नीरोग होनेके साथ-साथ अन्य बहुतोंपर भी प्रयोग किये। सफलताओं-से उत्साहित होकर सन् १८८३ में लिपज़िगमें उन्होंने अपना एक चिकित्सा-लय खोला। ९ साल बाद सन् १८९२ में उसे बढ़ाना पड़ा। रोगी-संख्या निरन्तर बढ़ते जानेके कारण सन् १९०१ में चिकित्सालयको और बड़ा करना पड़ा। कूने पत्र द्वारा भी बहुतोंको सलाह देते थे।

लगता है, कूने पढ़े-लिखे साधारण ही थे। उनकी जिस पुस्तक 'न्यू साइंस ऑव हीलिंग' का दुनियाकी ६७ भाषाओंमें अनुवाद हुआ और जिसकी एक करोड़के लगभग प्रतियां बिकनेका अनुमान किया गया है, उसके विचार कूने द्वारा पहले पांच व्याख्यानोंके रूपमें लिपज़िगमें सन् १८८८ में प्रकट किये गए थे। उन्हें हजारोंने सुना था।

उक्त पुस्तकके इतने अधिक प्रचारका वास्तविक कारण समझना तो कुछ कठिन ही है, पर इतना निःसंदेह कह सकते हैं कि आजतक चिकित्साकी किसी पुस्तकका दुनियामें इतना प्रचार नहीं हुआ, न अबतक दुनियामें दूसरी कोई ऐसी चिकित्सा-पुस्तक ही निकली, जिसकी मार्फत लाखोंने, घरबैठे, कठिनतम रोगोंसे, बड़ी आसानीसे अपनेको मुक्त किया हो। संभव है, इस एक विशेषताके कारण यह पुस्तक इतनी सर्वप्रिय हुई हो। इस प्रकार लाखोंकी रोग-मुक्ति इस प्रणालीके सिद्धांतोंकी सच्चाईका

सबसे बड़ा सबूत है। अपने सिद्धांतोंपर अटल विश्वासके सिवा कूनेके कहने-समझानेका ढंग भी अत्यन्त सहज और प्रभावशाली था।

रोगोंके निदान और उनके उपचारपर विद्वानोंने अबतक हजारों भारी-भरकम पोथे लिख छोड़े हैं। आज भी लिखते ही जा रहे हैं। चिकित्सा-शास्त्र दिनोंदिन इतना पेचीदा होता जा रहा है कि उसके अध्ययनमें कोई प्रखर बुद्धिका छात्र जिंदगीका एक अच्छा भाग गुजारकर भी कौड़ी काम-का नहीं हो पाता, न उन पोथियोंमें लिखित चिकित्सासे कोई वास्तवमें रोगमुक्त ही हो पाता है।

इसके विपरीत कूनेकी विधिकी तारीफमें कहा जा सकता है कि : १. यह प्रणाली अत्यन्त सरल है। किसीकी सहायताके बिना भी, केवल पुस्तक पढ़कर, अपना उपचार किया जा सकता है। हजारोंने ऐसा किया भी है। २. उपचारके साधन सर्वत्र सुलभ हैं। वही पांच तत्त्व—आकाश, पानी, मिट्टी, धूप, हवा—इसके साधन हैं, जिनसे शरीरकी रचना हुई है। ३. रोग जड़से आराम होता है। इसमें ऐसा नहीं होता कि एक दबा और कुछ समय बाद दूसरा उभरा। ४. जल्दी आराम होता है। ५. कोई खर्च नहीं है। ६. चीर-फाड़की जरूरत नहीं होती। ७. गंदी जहरीली दवाएं पेटमें नहीं डालनी पड़तीं। ८. रोगी हमेशाके लिए एक सही जीवन-पद्धति सीख जाता है। ९. व्यक्तिमें दूसरोंके साधारण रोगोंका उपचार करने लायक ज्ञान और साहस आ जाता है। १०. चिकित्सा-कालमें भी रोगीको खाट नहीं पकड़नी पड़ती। आराम होनेपर शीघ्र ही वह अपने सब कर्त्तव्य पूरे करने लगता है। ११. इस चिकित्सासे मनमें शान्ति और शरीरमें स्फूर्ति बढ़ती है। इसलिए कुछ लोग इसे दैवी या सात्त्विक चिकित्सा भी कहते हैं। १२. इस चिकित्साको समझ और पकड़ लेनेके बाद व्यक्ति फिर किसी दूसरी चिकित्साके धोखेमें नहीं आता। १३. मनसे रोगका भय चला जाता है। व्यक्ति रोगको शत्रु न मानकर मित्र मानना सीख जाता है। वह रोगोंकी विभिन्नताके जालसे निकल जाता है। १४. इसकी निदान-पद्धति भी अत्यन्त सरल और निर्भ्रान्त है।

कूनेके पहले, और बादमें भी, यूरोप तथा अमरीकामें अनेक बड़े-बड़े प्राकृतिक चिकित्सक हुए हैं—बहुत बड़े पंडित और चिकित्सा-शास्त्रके

निष्णात विद्वान्—एम० डी०, एल० एल० डी०—प्राकृतिक चिकित्सा पर अनेक तर्क तथा पांडित्यपूर्ण गंभीर अध्ययन-योग्य ग्रंथों के लेखक, पर उनके सब ग्रंथों का समग्ररूप में भी शायद इतना प्रचार नहीं हो पाया, जितना लूई कूनेकी अकेली 'रोगों की नई चिकित्सा' नामक पुस्तक का हुआ।

कूने ने अपनी प्रणाली को 'नवीन' कहा है, पर भारतीय वेद और आयुर्वेद में तो उनके प्रतिपादित सिद्धांत हजारों साल पहले से, किसी-न-किसी रूप में, मौजूद हैं। हां, कूने को उनकी खबर नहीं थी। कूने द्वारा उन्हें नवीन रूपमें रक्खा जरूर गया है। आयुर्वेदमें उन (पंचकर्मादि स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, वस्ति) सिद्धांतोंके साथ तो औषधवाद बेतरह घुला-मिला हुआ है। आयुर्वेद के प्रारंभिक कालमें चिकित्साके संशोधन (Purificatory) और संशमन (Palliative) दोनों प्रकार जारी थे। इधर आकर तो संशोधन प्रायः चला ही गया—केवल औषध ही रह गई; पर यूरोप और अमरीकामें ये दोनों प्रणालियां अलग-अलग विकसित हुईं। वहां डाक्टर केवल संशमन-चिकित्सा करते रहे और प्राकृतिक चिकित्सक संशोधन-चिकित्सा। आरंभमें वहां प्राकृतिक चिकित्साको संशमन-प्रणाली से निराश हुए रोगी ही मिले। इन संशोधन-प्राकृतिक-चिकित्सकोंकी दृष्टि में डाक्टरी चिकित्साकी त्रुटियां बहुत खटकीं। यह देखकर उन्हें दुःख होना स्वाभाविक ही था कि रोगी को व्यर्थ लम्बे समय-तक डाक्टरी चिकित्सा में उलझाकर हैरान किया गया, उसकी हाल बदतर की गई। यदि वह रोगी आरंभमें ही प्राकृतिक चिकित्सामें आया होता तो बड़ी आसानीसे, बहुत जल्द, आराम हो सकता था। प्राकृतिक चिकित्सकोंने अपने ये विचार जनताके सामने खुलकर रक्खे। इससे बिगड़कर अनेक डाक्टरोंने प्राकृतिक चिकित्सकोंपर मुकदमे दायर करवाये। कहते हैं, अकेले कूनेपर १५४ मुकदमे चलवाये गए, जिन सबमें वह बेदाग छूटे। जजों की जोरदार राय रही कि यह चिकित्सा निर्दोष और उपयोगी है।

इसीके परिणामस्वरूप बर्लिनके नामी डाक्टर ब्रैंडने अपने रोगियोंपर जल-चिकित्साके प्रयोग करके देखे और पाया कि डाक्टरी इलाजसे मियादी बुखार में जहां ५०-६० प्रतिशत रोगी मर जाते हैं, वहां जल-चिकित्साके प्रयोगसे शत-प्रतिशत रोगी अच्छे होते हैं। तब उसने एक तगड़ा निबन्ध

लिखकर अपनी बिरादरीवालोंके (डाक्टरोंके) सामने यह तथ्य रक्खा। तबसे दुनियाके सभी समझदार डाक्टरोंने मियादी बुखारमें ठंडे जलका प्रयोग करना शुरू किया। पर डाक्टरोंका ध्यान इस सीधी-सी बातपर न जा सका कि वही सीधा-सादा ठंडे जलका उपचार तथा उपवास अन्य रोगों भी उतना ही अच्छा काम कर सकता है, जितना कि मियादी बुखारमें करता है।

आयुर्वेदमें निदान उसे कहा है, जिससे व्याधिका निर्देश हो—"निर्दिश्यते व्याधिरनेनेति निदानः।" हर चिकित्साकी अपनी अलग निदान-पद्धति होती है। लूई कूनेने चिकित्साकी भांति ही अपनी निदान-पद्धति भी निराली रक्खी, वैसेही अत्यन्त सरल भी। होना भी यही चाहिए था। जहां सब रोग एक माने गए हैं, वहां सब रोगोंके कारण भी अनेक क्यों होने लगे? कूनेने अपने निदान के संबंधमें लिखा है कि बहुतेरे स्त्री-पुरुषोंको उन्होंने अपनी निदान-पद्धतिकी प्रत्यक्ष, व्यावहारिक शिक्षा दी और उन लोगोंने थोड़े ही समयमें उसमें दक्षता प्राप्त कर ली।

कूनेने अपनी निदान-पद्धति समझाने के लिए अंग्रेजी में 'साइन्स ऑव फेशल एक्सप्रैशन' पुस्तक प्रकाशित की थी। वर्तमान पुस्तक 'आकृतिसे रोगकी पहचान' उसीका हिन्दी-अनुवाद है।

यह पुस्तक भी 'रोगों की नई चिकित्सा'से कम उपयोगी नहीं है। कूनेको भलीभांति समझने के लिए इसका पढ़ना भी उसी प्रकार अनिवार्य है, जिस प्रकार 'रोगों की नई चिकित्सा' का। निदान-पद्धतिके अतिरिक्त कूनेने इस पुस्तक में और भी ऐसी अनेक बातें कही हैं, जो 'रोगों की नई चिकित्सा' में छूट गई थीं।

पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि कूनेकी निदान-पद्धति और रोगके कारणोंकी व्याख्या आयुर्वेद से काफी मिलती है। कूनेने मिथ्याहार-विहारको रोगका—दोष-संचयका—कारण माना है। आयुर्वेद भी कहता है—"मिथ्याहारविहारेण रोगाणामुद्भवो भवेत्।" (चरक)। कूनेका कहना है कि उन दोषों-मलों-का कुपित होना ही रोग का कारण है। आयुर्वेद भी कहता है—"सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः। तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम्॥" (चरक)—सभी रोगोंका

कारण कुपित मल-दोष हैं, और उनके प्रकोपका कारण अनेक प्रकारके अहित आहार-विहार का सेवन है।

कूनेका कथन है कि बढ़ जाने या फूट पड़ने तक दोष-संचय व्यक्तिको विना अधिक कष्ट दिये शरीरमें सुप्त पड़ा रहता है। गर्मी-सर्दीकी वृद्धि-पर अन्य किसी प्रकार का शारीरिक या मानसिक आघात पाकर वह संचय उभरकर रोगकी शक्ल पकड़ता है। आयुर्वेद भी दोष-संचय और उस संचयकी उत्तरोत्तर छः अवस्थाएं मानता है—"संचयं च प्रकोपं च प्रसरं स्थानसंश्रयम्। व्यक्ति भेदं च यो वेत्ति दोषाणां स भवेद्भिषक्" (सुश्रुत) १. संचय, २. प्रकोप, ३. प्रसर, ४. स्थानसंश्रय, ५. व्यक्ति और ६. भेद—इनको जाननेवाला ही चिकित्सक कहा जायगा।

कूनेने कहा है कि मेरी निदान-पद्धतिकी एक बड़ी खूबी यह है कि रोग फूट पड़नेके पहले ही हम रोगीकी शकल देखकर उसे आगे आनेवाले खतरे (रोग) से आगाह कर सकते हैं। उस समय—पूर्वावस्थामें—तो रोगको दूर करना अपेक्षाकृत सहज होता है। बादको बड़ी कठिनाई होती है। यही बात आयुर्वेदमें भी कही गई है। "चय एव जयेद्दोषम्"—अर्थात् संचय-कालमें—प्रारंभिक अवस्थामें—ही दोषोंको दूर करना चाहिए, अन्यथा आगे वे ही दोष मजबूत हो जाते हैं :

संचयेपहृता दोषा लभन्ते नोत्तरा गतिः।
ते तूत्तरासु गतिषु भवन्ति बलवत्तराः॥

लेकिन दोष-संचयको जानें कैसे? इसके लिए आयुर्वेदमें कहा गया है :

दोषादीनां त्वसमतामनुमानेन लक्षयेत्।
अप्रसन्नेन्द्रियं वीक्ष्य पुरुषं कुशलो भिषक्॥

—उस दोष-संचयको कुशल वैद्य रोगीकी अप्रसन्नता (यानी चेहरे अथवा त्वचाकी म्लानता) देखकर जाने।

लेकिन कूनेने अपनी इस 'आकृतिसे रोगकी पहचान' पुस्तकमें एक स्वस्थ शरीर का चित्र और मुकाबलेके लिए अन्य दर्जनों अस्वस्थ शरीरों के चित्र देकर इस विषयको इतना स्पष्ट कर दिया है कि दोष-संचयके जानने-के लिए अधिक कुशलताकी आवश्यकता नहीं रह जाती। एक मामूली

होशियार व्यक्ति 'आकृतिसे रोगकी पहचान' पुस्तक पढ़कर किसी दोष-संचयवाले आदमी को देखकर उसके रोगकी स्थितिके बारेमें कह सकता है।

रोग-परीक्षाके लिए आज तो ऐक्सरे, थर्मामीटर, स्टैथस्कोप, कार्डिओ-ग्राफ आदिका उपयोग किया जाता है और रोगीके मल-मूत्र, थूक, कफ और खूनकी जांचके बहाने उसकी जेब खालीकी जाती है। यह नितान्त भ्रमपूर्ण और दुकानदारीसे भरा हुआ निदान है।

रोगीको तो मतलब आराम होनेसे होता है। यदि ये जांचें उसको आराम पहुंचानेमें सहायक हों, तो ठीक, अन्यथा इनसे रोगीकी परेशानी बढ़ती ही है। बहुत बार इन जांचोंके परिणामस्वरूप डाक्टर अनेक नये रोगोंका वहम पैदा कर देता है, जिससे रोगीकी जानपर आ बनती है। बहुत बार तो रोगी पीड़ासे कराहता रहता है और डाक्टर उससे कहता है कि तुम्हारी जांचमें तो कोई खराबी नहीं मिलती है।

कुछ लोग कहेंगे कि आपका यह कहना सही हो सकता है कि डाक्टर अंधेरेमें ढेला फेंकता है। यह भी हम मान सकते हैं कि उनकी दवाइयों-से जैसा चाहिए, वैसा लाभ नहीं हो पाता। यह भी मान लेंगे कि उन दवाओंके परिणामस्वरूप व्यक्तिको अनेक नये रोग लग जाते हैं, लेकिन एलोपैथीका जांचका तरीका जैसा वैज्ञानिक है, वैसा और किसी पद्धतिका नहीं है, यह तो आपको भी मानना पड़ेगा। इन भोले भाइयोंको हम कैसे समझायें कि रोगी चिकित्सकके पास अपने रोगके इलाजके लिए जाता है, पीड़ा दूर करने, न कि केवल अपने शरीरकी जांच कराने। यदि कोई मोची जूतेके कटने-फटनेके कारणपर बहस करने लगे तो वह गंवार ही कहलायेगा। गाहक मोचीके पास सिर्फ जूतेकी मरम्मतके लिए जाता है। नाईके पास हम बाल बनवाने जाते हैं, न कि इस बातपर बहस सुनने कि बाल बढ़े क्यों और कैसे ?

जो निदान एक गौण वस्तु है, उसे डाक्टरीमें बेजा महत्व दे दिया गया है, इतना कि वह अपने-आपमें एक स्वतंत्र चीज बन गई है और उसके लिए अलग पेशेवर हो गए हैं। यदि निदानका परिणाम रोगके आराम होनेकी शक्लमें हमें न मिले तो उसकी सूक्ष्मता और आडम्बरके ढोंगसे किसीको क्या हासिल होना है ?

मानिये, बड़ी गहरी जांचोंके वाद सिद्ध हुआ कि रोग 'डाइबिटीज़' है। इतनेसे ही 'डाइबिटीज' चला गया क्या ? इन्सुलिनके इन्जेक्शन और डाइबिटीज़की गोलियां लिख दी गईं। खाते चलिये, जिंदगीभर। डाइबिटीज़ तो लगा हुआ था ही, ये इन्जेक्शन और गोलियां और लग गईं ! "एक न शुद दो शुद !"

जहां निदान ही फिजूल हो, वहां इलाज कामका कैसे हो सकता है ?

कूनेकी 'आकृतिसे रोगकी पहचान'-प्रणालीके आधारपर मेरे सामने हजारों व्यक्तियोंकी चिकित्सा हुई है और वे रोगी चंगे हुए हैं। दूसरी निदान-विधिका सहारा लेनेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी।

कुछ लोग कहते सुने जाते हैं कि चिकित्सा आप प्राकृतिक कीजिये, मगर जांच डाक्टरी करा लेनेमें हर्ज क्या है ? यह वैसे ही है, जैसे कोई कहे कि अपने लड़केको आप चाहे हिन्दी पढ़ाइये, लेकिन अंग्रेजी व्याकरणके द्वारा हिन्दी सिखानेमें क्या आपत्ति है आपको ?

हर्ज यही है कि रोगीका कोई फायदा नहीं होगा और प्राकृतिक चिकित्सा मुफ्तमें बदनाम होगी। जो प्राकृतिक चिकित्सक डाक्टरी निदानके सहारे चिकित्सा करते हैं, वे अपनी कमजोरी जाहिर करते हैं। क्यों हम इस कहावतको ऊपर लगने दें :

घर की खांड खुरखुरी लागै, चोरी का गुड़ मीठा।

प्राकृतिक चिकित्सा-केन्द्र,
जसीडीह (विहार)

—महाबीरप्रसाद पोद्दार

निवेदन

इस पुस्तकमें मैं अपने वर्षोंके अन्वेषण तथा अध्ययनके परिणाम जन-सामान्यके लिए प्रस्तुत कर रहा हूं। मुझे विश्वास है कि इसका हार्दिक स्वागत होगा।

पाठकोंसे मेरा अनुरोध है कि वे इस पुस्तकका अध्ययन निष्पक्ष मस्तिष्कसे करें और जबतक स्वयं व्यावहारिक अनुभव प्राप्त न करलें, तबतक इसकी उपयोगिताके विषयमें अपना फैसला न दें। दुर्भाग्यसे, केवल इस पुस्तकको पढ़ लेनेसे ही निदानकी नई पद्धतिको पूरी तरहसे समझ लेना आसान नहीं है, कारण कि इसके चित्रोंमें व्यक्तियोंकी आकृति मात्र ही दी जा सकती थी, शरीरके विभिन्न अंगोंके रंग और गति नहीं, फिर भी थोड़ा धैर्य रखने पर जिज्ञासु पाठकोंको अवश्य सफलता मिलेगी। वस्तुतः विभिन्न आकृतियोंकी अपेक्षा स्वस्थ रंगको अधिक सुगमता से पहचाना जा सकता है। इस पुस्तकमें आकृतियां खूब दी गई हैं। इन आकृतियोंको पूरी तरह समझ लेनेपर मुखाकृति-विज्ञानकी दिशामें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कदम उठा लिया गया, ऐसा मानना चाहिए। मैं हर किसीको इस बातके लिए प्रोत्साहित करूंगा कि वह निदानकी नई पद्धतिका मेहनतसे अध्ययन करे और जितनी जल्दी संभव हो सके, स्वयं व्यावहारिक अन्वेषण आरंभ कर दे। अभ्याससे पूर्णता प्राप्त होती है, धैर्य लक्ष्यपर पहुंचा देता है।

मुझसे बार-बार पूछा गया है कि मैं मुखाकृति-विज्ञानकी स्थापना किस प्रकार कर सका हूं ? इस पुस्तकमें इसका जवाब आ गया है। इसमें बताया गया है कि किस तरहसे लगातार अन्वेषण करने, सोचने और परीक्षण करनेसे मैं इन परिणामोंपर पहुंचा हूं, जिनकी मैंने स्थापना की है।

अपने चिकित्साके धंधेमें मैंने सन् १८८३ से मुखाकृति-विज्ञानको स्थान दिया है और सन् १८८८ से बराबर इस विषयका शिक्षण दे रहा

हूं। शिक्षणका मेरा अनुभव यह है कि जिसके स्वस्थ आंखें हैं, वह निदानकी नवीन पद्धतिको सीख सकता है और इसके लिए किसी विशेष प्रतिभाकी आवश्यकता नहीं है। इन वर्गों द्वारा कुछ हदतक लोग मुखाकृति-विज्ञानके सिद्धान्तोंसे परिचित हो गए हैं।

इस पद्धतिकी खोज पहले-पहल मैंने की, मेरे इस अधिकारका विरोध करनेके लिए प्रयत्न हुए हैं। हम देखते हैं कि एक प्रोफेसर तथा राज-चिकित्सकने अपनी एक रचनामें, जिसे उन्होंने लिपज़िग-विश्वविद्यालयकी मेडीकल फैकल्टीको समर्पित किया था, इस खोजको अपने दिमागकी उपज कहकर प्रकाशित किया है। साथ ही मैंने जो लेक्चर दिये थे, उन्हें प्रायः ज्यों-का-त्यों अपना कहकर छाप दिया है।

हो सकता है कि किसी समय ऐसे व्यक्ति हुए हों, जिन्होंने शरीरकी बाह्याकृतिसे आंतरिक स्थितिका निदान करनेकी कोशिशकी हो, लेकिन उनके प्रयत्नोंका कोई व्यावहारिक फल नहीं निकला।

मेरी हमेशासे इच्छा रही है कि कुछ ऐसी चीज प्रस्तुत करूं, जो वास्तवमें व्यावहारिक और हरकिसीके लिए लाभदायक हो। इसमें मुझे सफलता मिली है या नहीं, इसका निर्णय मैं अपने पाठकोंपर छोड़ता हूं।

—लूई कने

विषय-सूची

०

आकृतिसे रोगकी पहचान

: १ :

विषय-प्रवेश

आकृतिसे रोगकी पहचान अथवा मुखाकृति-विज्ञान नवीन चिकित्साकी रोग-निर्णायक—निदान—पद्धति है। नवीन चिकित्साके सिद्धान्तोंको पूर्णतया पचा पानेवाले ही इस नई निदान-विधिको पूरी तरह समझ सकेंगे। वे सिद्धांत 'रोगों की नई चिकित्सा'[1] पुस्तकको पढ़कर समझे जा सकते हैं।

नीचे वे संक्षेपमें दिये जा रहे हैं :

१. रोगका कारण एक ही है। शक्लें उसकी भिन्न-भिन्न हो सकती हैं, उसका ज़ोर कम-ज्यादा हो सकता है। शरीरके भीतरी भागमें रोग और उसके बाहर प्रकट होनेवाले लक्षण पैतृक प्रभावों, उम्र, पेशा, निवास, खुराक, जलवायु, रहन-सहनके ढंग आदिपर निर्भर करते हैं।

२. शरीरमें दोष-संचय होनेपर रोग होता है। पहले-पहल यह दोष पेड़ू के निकटस्थ भागोंमें एकत्र होता है। वहांसे वह शरीर-के विभिन्न भागोंमें जाता है—खासकर, गर्दन और सिरसे। इस विकारी पदार्थ—दोष-संचय—के कारण शरीरकी शक्लमें फर्क़

---

१. 'सस्ता साहित्यमण्डल', नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित। मूल्य सजिल्द : दो रुपये पचास पैसे।

पड़ जाता है। इस फर्कको परखकर रोगकी कमी-बेशीका अनुमान किया जा सकता है।

मुखाकृति-विज्ञानकी यही बुनियाद है। दोषका इस प्रकार संचित होना स्वीकार किये बिना, मुखाकृति-विज्ञानकी गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती, और शरीरकी आकृतिमें साफ दिखाई देनेवाले फ़र्क से कोई इन्कार कर भी कैसे सकता है ? यह प्रत्यक्ष प्रमाण ही इस सिद्धांतकी सच्चाईका मूल है।

३. बिना ज्वरके रोग नहीं होता और बिना रोगके ज्वर नहीं होता। शरीरमें दोषके प्रवेश और वहां उसके संचयके कारण, शारीरिक अवयवों और संचयमें संघर्ष आरम्भ होता है। इस आंतरिक—आभ्यन्तर—घर्षणके कारण ही ज्वर पैदा होता है। हम बराबर देखते हैं कि एक अंगुलीमें तनिक-सा कांटा गड़ जाने मात्रसे समूचा शरीर बेचैन हो जाता है, एक प्रकारका ज्वर आ जाता है और शरीरसे उस विजातीय द्रव्यके निकलनेपर ही वह जाता है। इसी प्रकार शरीरके आंतरिक भागमें हुआ दोष-संचय भी ज्वर पैदा करता है।

आरम्भमें वह प्रायः हल्का रहता है। भीतर जीर्णज्वरके रूपमें बना रहता है। पर शरीरमें कोई आकस्मिक परिवर्तन होने-पर, ऋतु-परिवर्तन अथवा किसी मानसिक उत्तेजना आदिके कारण, उस दोषके प्रकुपित होनेपर ज्वर उग्र रूप धारण कर लेता है। ज्वरके बिना किसी रोगकी स्थितिकी कल्पना ही गलत है।

मुखाकृति-विज्ञान

मुखाकृति-विज्ञान के द्वारा शरीरकी बाहरी आकृतिको देख-कर शरीरकी आंतरिक दशाका ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

१. इसके द्वारा यह देखा जाता है कि शरीरमें दोष-संचय

कितनी मात्रामें, किस भागमें, संचित है।

२. इस दोष-संचयका रोगके वर्तमान और भावी लक्षणोंसे क्या संबंध है, यानी इसके कारण शरीरमें वर्तमानमें क्या रोग हैं और भविष्यमें क्या-क्या हो सकते हैं।

इतना होते हुए भी मुखाकृति-विज्ञानका काम शरीरके बाहरी या भीतरी सूक्ष्म परिवर्तनोंका विवरण देना नहीं है, और न रोगके विभिन्न रूपोंपर विचार करना ही उसका उद्देश्य है। न यही कि डाक्टरीकी भांति उन रूपोंको अलग-अलग नाम दिया जाय। इसके विपरीत, इसका उद्देश्य है समूचे शरीरको एक इकाई मानकर उसकी जांच करना और यह देखना कि अवयव स्वस्थ हैं या रुग्ण, और रुग्ण हैं तो यह निर्धारित करना कि बीमारी कहांतक बढ़ी है या अभी बढ़नेवाली है और उसके अच्छे होनेकी कितनी संभावना है।

इसके द्वारा हम स्पष्ट रूपसे समूचे शरीरकी दशाका निर्णय कर सकते हैं। हम यह फैसला कर सकते हैं कि रोगकी दशा गम्भीर है अथवा रोगी आसानीसे अच्छा किया जा सकता है। इस विज्ञान-की यही विशेषता है। इसकी पूरी कीमत आंकनेके लिए हमें अन्य पद्धतियोंकी निदान-विधिकी थोड़ी आलोचना करनी होगी।

अन्य निदान-पद्धतियाँ

डाक्टरी—सरकारी मान्य पद्धति और जिसका आज बोल-बाला है—रोगके सूक्ष्म—पुंखानुपुंख विवेचनपर जोर देती है। तदर्थ शरीर-रचना-शास्त्रका सम्यक् अध्ययन आवश्यक माना जाता है, विशेषतः मुर्दों—लाशों—को चीर-फाड़कर। डाक्टरों-को शरीरके ज़र्रे-ज़र्रे—प्रत्येक पुर्ज़े—का नाम जानना चाहिए। प्रत्येक अवयवका, उसके स्थान और स्थितिका पूरा ज्ञान होना

चाहिए। साथही, यह भी समझना चाहिए कि आन्तरिक अवयवोंकी पहचान उनकी कार्य-प्रणालीसे कैसे की जा सकती है।

इसके लिए डाक्टर रोगीके शरीरको अंगुलियोंसे ठोंकता है, उसे छूकर देखता है, आकर्णन-यंत्रद्वारा हृदयकी धड़कन सुनता है और इन ज़रियोंसे वह अवयवोंकी दशाका सिद्धांत स्थिर करता है। निर्भ्रान्त निर्णयके निमित्त अनेकानेक बारीक औज़ार बनाये गए हैं। इन सूक्ष्म और नाज़ुक औज़ारोंके आविष्कारकोंके बुद्धि-कौशलपर अचंभा होता है। थर्मामीटरके साथ ही इधर माइक्रोस्कोप (खुर्दबीन) का महत्त्व भी बढ़ गया है,[1] क्योंकि लगभग हर रोगका कारण कोई-न-कोई जीवाणु माना जानें लगा है। विज्ञानवेत्ता इन गरीब जीवाणुओंके पीछे हाथ धोकर पड़े हैं।

संपूर्ण डाक्टरी जांचमें भिन्न-भिन्न प्रकारके पर्यवेक्षण होते हैं, लेकिन एक जांचसे दूसरी जांचका शायद ही कोई संबंध रहता हो। पहले डाक्टर रोगीसे तरह-तरहके जबानी सवाल करता है, फिर उसकी जीभ देखता है, नाड़ी टटोलता है, फेफड़े और हृदयकी दशा जाननेको उसकी छाती और पीठ ठोंकता-बजाता है। फिर तिल्ली, जिगर और पेटको दबाकर देखनेंका स्वांग चलता है। उसके बाद गुप्तांगोंकी जांचका नम्बर आता है। स्त्रियोंके गुप्तांगोंको तो परिदर्शक यंत्र द्वारा देखा जाता है। खूनकी गर्मी थर्मामीटर द्वारा देखी जाती है। खून, लार, थूक, पेशाबके कण-कणकी जांच की जाती है। फिर अलग-अलग अंगोंकी, जैसे आंख, नाक, कानकी जांचकी जाती है। प्रायः इन अंगोंकी जांचके लिए रोगीको इन

१. कूनेके द्वारा उपर्युक्त पंक्तियां लिखी जानेके बाद तो इन जांचोंके लिए और कितने ही औजार निकल आये हैं, जिनमें इस समय 'ऐक्सरे' का फैशन सबसे ज्यादा है।

—अनु०

अंगोंके विशेषज्ञोंके पास भेजा जाता है। अंतमें डाक्टर फत्तवा क्या देता है ? अमुक-अमुक अवयव तो बिल्कुल ठीक हैं, अमुक अंगमें थोड़ी-सी खराबी आई है, और तीसरा तो बिल्कुल ही खराब हो गया है। संपूर्ण शरीरकी दशाके संबंधमें, उसकी जीवनी-शक्तिके संबंधमें, तो शायद ही कोई फिकरा कहा जाता हो। इतनी माथा-पच्ची—जांच-पूछ—का कोई ख़ास नतीजा नहीं निकलता। चिकित्सक इतना तो रोगीसे पूछकर ही जान लेता है। वर्षोंके अभ्यास से उसमें इतना कौशल तो आ ही जाता है कि रोगीकी सूरत-शक्लसे ही कुछ बातें जान ले। फिर निदानका यह इतना आडंबर क्यों ? इन कार्र-वाइयोंको व्यर्थ महत्त्व देनेसे रोगीका क्या भला होता है ?

पहली बात, ये जांचें प्रायः अविश्वसनीय होती हैं। अलग-अलग डाक्टरोंकी जांचका नतीजा इतना भिन्न होता है कि सुनकर पाठक आश्चर्य करेंगे। बड़े-बड़े विशेषज्ञ तक निदानमें प्राय; एकराय नहीं होते। दोष-संचयसे तो उन्हें कोई मतलब ही नहीं होता। अधिक-से-अधिक दोष-संचयवाले रोगीको भी डाक्टर प्रायः नीरोग कहते देखे जाते हैं। इधर रोगी अपनेको बिल्कुल अस्वस्थ मान रहा है और कष्टसे बेचैन हो रहा है, विशेषतः नाड़ी-दौर्बल्यके मरीजोंके साथ तो यही होता है। वे बेचारे यह सुनकर बड़े निराश होते हैं कि उन्हें कोई रोग नहीं है, जबकि वे बुरी तरह कष्टपीड़ित होते हैं।

औषध-विज्ञान की यह अनिश्चितता बिल्कुल स्वाभाविक है, क्योंकि अभीतक इन पुराणपंथी डाक्टरोंने रोगकी प्रकृति ही नहीं पहचानी है। दूसरे, औषध-विज्ञानियोंका निदान उपयुक्त उपचारके लिए कोई बुनियाद नहीं देता। जहां निश्चित रूपसे

कहनेकी गुंजाइश है, वहां भी यह किसी नतीजेपर नहीं पहुंचता, क्योंकि डाक्टर प्रायः यही मानकर चलता है कि शरीरके भिन्न-भिन्न अंग दूसरे हिस्सोंसे असंबंधित रहकर स्वतंत्र भावसे रुग्ण होते हैं और इसीके अनुसार उपचार किया जाता है।

इनके बेकार और घातक निदानके अनगिनत उदाहरण मेरे पास हैं। यहां नमूनेके लिए सिर्फ तीन उदाहरण काफी होंगे।

१. एक व्यक्ति जीभकी सूजनसे बहुत कष्ट पा रहा था। इसके निदान में डाक्टरको कोई कठिनाई नहीं थी। उसे उपचार केवल जीभका बताया गया, क्योंकि इसीको डाक्टरने कष्टका स्थान माना था। परिणाम तो असंतोषजनक होना ही था। रोगीकी दशा बिगड़ती गई। जीभ सूजती ही गई, यहांतक कि अब वह मुंहको हिला-डुला भी न सकता था। इस हालत में वह मेरे यहां लाया गया। मैंने मुखाकृति-विज्ञानके सिद्धांतानुसार निदान करके उपचार बतलाया और वह बिल्कुल अच्छा हो गया।

२. बर्लिनके एक कुनबेमें एक बच्चा महीनोंसे बीमार पड़ा था। एक प्रसिद्ध प्रोफेसर चिकित्सक ने बतलाया कि रोग पुआल पर पनपनेवाले कुछ जीवाणुओंके कारण हुआ है। यद्यपि वह बच्चा पुआलके पास कभी गया भी न था, तथापि अणुवीक्षण यंत्र जो कह रहा है, वह कैसे झूठ हो सकता है? डाक्टरने उन जीवाणुओंका नाश करना अपना फर्ज समझा। परिणाम दुर्भाग्य-पूर्ण था। बच्चे की हालत दिनदिन खराब होती गई और साथ-साथ जीवाणु भी बढ़ते गए। इसी समय घरवालों का ध्यान मेरी चिकित्साकी ओर गया। मैंने मुखाकृति-विज्ञानसे उसकी जांच की। जीवाणुओंके बखेड़ेको किनारे रखकर मैंने उपचार बतलाया। रोगी चंगा हो गया। डाक्टरको मेरे उपचारके बारेमें

कुछ बतलाया नहीं गया। इस बीच उसे सिर्फ खूनकी जांचके लिए बुलाया गया, तो उसने अणुवीक्षण यंत्र द्वारा बड़े आश्चर्यसे देखा कि जीवाणु असाधारण रूपसे घट गए हैं। इसपर वह बोला कि कभी-कभी कुदरत स्वयं इन जीवाणुओंका नाश कर देती है।

३. मिस्टर एम० मजबूत ढांचेका आदमी था। बीमारीके कारण दस वर्ष तक निकम्मा बना रहा। वह आत्महत्या करनेकी फिक्रमें था। घरवालोंको उसपर बराबर निगाह करनी पड़ती थी। कितने ही डाक्टर जांचके बाद इसी नतीजे पर पहुंचे कि वह सिर्फ मनके विषादसे ग्रस्त है। उसे कहीं पहाड़पर जाकर हवा-पानी बदल आना चाहिए। उसका भी कोई नतीजा न निकला। मेरे यहां लानेपर मैंने मुखाकृति-विज्ञानकी दृष्टिसे उसके शरीरमें भयंकर रूपसे दोष-संचय पाया। मेरी विधिके अनुसार उपचार करने पर कुछ ही महीनोंमें मि० एम० नये आदमी हो गए—खुशोखुर्रम। अब बिना किसी हिचकिचाहटके उनके हाथमें पिस्तौल दी जा सकती थी।

निदानका यह पुराणपंथी तरीका बिल्कुल व्यर्थ है। उसका आधार ही गलत है। उसके अनुसार उपचार करके रोगीको कोई फायदा नहीं हो पाता। इसकी यह मान्यता कि एक अंग दूसरे अंगोंसे कोई संबंध न रखकर स्वतंत्र रूपसे रुग्ण होता है, बिल्कुल वाहियात है। इसी गलतफहमी के परिणामस्वरूप हर अंगके अलग विशेषज्ञ पैदा हुए हैं। यह बला इतनी बढ़ गई है कि अब डाक्टर तक इसका विरोध करनें लगे हैं। यह भी संभव है कि आगे किसीके आंख, कान और नाकमें एक साथ तकलीफ पैदा हो तो अलग-अलग तीन विशेषज्ञ बुलाये जायं! कोई दूसरा

अंदरूनी रोग और हुआ तो एक चौथा भी पहुंचेगा।

डाक्टर स्वयं स्वीकार करते हैं कि अबतक उन्होंने रोगको बुनियादका पता नहीं पाया है। रोगकी प्रकृति के संबंध में उनमें परस्पर मतभेद बना रहता है, पर उनके दलसे बाहरका आदमी कोई नई चिकित्सा बतलाये तो ये पुराणपंथी जामेसे बाहर हो जाते हैं।

अगर कोई डाक्टर कहीं कामयाब होता है तो उसका कारण है कि अपने निदानके बावजूद वह सारे शरीर का साधारण उपचार बतलाता हैं। अधिकांश स्थलोंमें सफलता तात्कालिक होती है और वह भी कुछ विशेष लक्षणोंको दबा देने के कारण।

औषधियां रोगों को दबाती ही हैं, निकालती नहीं। जैसे, पारेकी औषधियां, कभी वास्तविक नीरोगिता नहीं लातीं, बल्कि रोगको बिगाड़ती हैं। इनके द्वारा यौन रोगोंके कुछ लक्षण दबा जरूर दिये जाते हैं। पारेके द्वारा अच्छे हुए कहे जानेवाले रोगियोंकी बुरी हालत देखकर बड़ा अफसोस होता है। इसी प्रकार मार्फिया, आयोडिन, ब्रोमाइन, क्विनोन, ऐंटीपायरीन और आर्सनिक आदिका बड़ा भयंकर परिणाम होता है।

डाक्टर किसी रोगको पकड़ तब पाते हैं जब वह खूब बढ़ चुका होता है। रोगके प्रारंभ कालमें तो वह कुछ भी नहीं जान पाते। न उनको यही पता लगता है कि बीमारी आगे कितनी बढ़ेगी। रोगकी प्रथमावस्थामें ही (दोष-संचय-कालमें) उसका पता लगा लेना और यह समझ लेना कि वह क्या रास्ता अख्तियार करेगा, बहुत आवश्यक है। उस दशामें हम तुरंत उसका उपचार

करके बहुत आसानीसे उसे दूर कर सकते हैं।

होमियोपैथी ऐलोपैथीमेंसे ही निकली है और इसके अधिकांश अभ्यासी निदानके पुराणपंथी तरीकेको ही अपनाये हुए हैं, बल्कि वे ऐलोपैथीसे भी अधिक सूक्ष्म जांचके चक्करमें रहते हैं।

होमियोपैथीमें बाहरी लक्षणोंसे रोगकी पहचानका तरीका भी माना जाता है। निस्संदेह बहुत मामलोंमें यह नवीन चिकित्साकी निदान-विधिसे मिलती है। फिर भी होमियोपैथीमें निदानकी कोई स्पष्ट, निश्चित प्रणाली नहीं है। इसकी चिकित्सा प्रायः रोगी या रोगीके घरवालोंके रोग-संबंधी विवरणपर ही निर्भर करती है।

रोगीके वास्तविक उपचारमें होमियोपैथीने जरूर कुछ तरक्की की है, क्योंकि औषधिकी अल्प मात्रा शरीरको बड़ी मात्राकी भांति अशक्त नहीं करती, बल्कि एक जीवनप्रद प्रभाव डालती है। दुर्भाग्यवश बहुत-से होमियोपैथ विषैली दवाओंकी बड़ी मात्राका इस्तेमाल भी करते हैं।

: २ :

मुखाकृति-विज्ञानकी पद्धति

केवल नामसे किसी वस्तुकी प्रकृतिके वास्तविक रूपका पता लगानेकी कोशिश करना गलत है। वैसे तो मुखाकृति-विज्ञान शरीरके सारे अवयवोंसे संबंध रखता है, पर मुख (चेहरा) शरीरका सबसे पहले ध्यानमें आनेवाला भाग है और उसपर मानसिक और शारीरिक सारी आंतरिक क्रियाएं प्रतिबिंबित होती हैं। अतः सबसे पहले उसीको देखना आवश्यक है। निदान-के इस नये तरीकेको इसीलिए यह नाम दिया गया है।

ऐसा कोई रोग नहीं होता, जिसमें शरीरका कोई खास हिस्सा ही प्रभावित होता हो। रोगकी हर हालतमें सारे शरीरको तकलीफ, बेचैनी (बेआरामी) होती है। यों तो रोगकी हालतमें समूचे शरीरके वर्ण (रंग) और आकृतिमें फर्क पड़ जाता है, पर कुछ खास स्थानोंपर यह परिवर्तन इस रूपमें होता है कि उसकी परीक्षा की जा सके। अवयवोंकी गति-विधिका ढंग भी बदल जाता है, लेकिन परिवर्तन पूरी तरह प्रकट होनेतक ध्यानमें नहीं आता। दोषसे लदे हुए शरीरकी क्रियामें स्वस्थ शरीरकी अपेक्षा अंतर रहता है। जैसे लकवा या कमजोरी अथवा फीलपांवके कारण पांवोंके फूल जानेपर मनुष्यकी चालमें फर्क पड़ जाता है। चालसे उसकी बीमारीका अंदाज किया जा सकता है। मुखाकृति-विज्ञान इन सबपर ध्यान देता है। शरीरकी बनावट, परिचालन, रंग, गति ये सब सावधानीसे देखे जाते हैं, पर फर्कको परखनेके लिए हमें पहले मनुष्य के स्वस्थ शरीरका अध्ययन करना आवश्यक है।

स्वस्थ मनुष्य

आज जो हालत है उसमें, उदाहरणके लिए भी, पूर्ण स्वस्थ मनुष्य पाना मुश्किल है। जंगली जीवोंमें तो सभी स्वस्थ होते हैं। उनमें बीमार तो कोई ही मिलेगा। इसलिए उनमें स्वाभाविक (आदर्श) आकृतिका पाना आसान है, पर सभ्य मनुष्यमें वह उतना ही मुश्किल है।

मैं मनुष्य-शरीरकी स्वाभाविक आकृति एक हद तक ही बनानेमें सफल हुआ हूं। सर्वप्रथम मैं शारीरिक क्रियाओंके अध्ययन-से इस परिणामपर पहुंचा कि वास्तविक स्वास्थ्यके लिए शरीर कैसा होना चाहिए, क्योंकि स्वस्थ शरीरको अपनी सब क्रियाएं सुगमतासे सम्पादन करने योग्य होना चाहिए, बिना किसी तक-लीफके, बिना किसी कृत्रिम उत्तेजनाके। सर्वप्रथम उन क्रियाओं-का स्थान होगा, जो शरीर-निर्वाहके लिए अत्यावश्यक हैं, जैसे, खुराकका पाचन और मलका निष्कासन। स्वस्थ मनुष्यको वह सच्ची भूख लगती है, जिसमें प्राकृतिक खुराक द्वारा पूरी तृप्ति होती है। पेटके ठंसनेसे होनेवाली किसी प्रकारकी बेचैनी अनुभव होनेके पहले ही वह तृप्ति आ जाती है। पाचन-कार्य इतना चुप-चाप चलता है कि व्यक्तिको उसका पता भी नहीं चलता। खाने के बाद भारीपन और भांति-भांतिकी तकलीफें, तेज मसालेदार खुराक और तीखे पेय पदार्थोंकी इच्छा, नितान्त अप्राकृतिक है और रोगका चिह्न है। प्यास लगनेपर केवल पानीकी इच्छा होनी चाहिए। पेशाब आनेमें कोई कष्ट नहीं होना चाहिए, न उसे अधिक गर्म होना चाहिए। वर्ण-विहीन, सुर्ख रंगका, काला, मैला या गाढ़ा नहीं होना चाहिए। साधारणतः इसका रंग हल्का पीला, बादामी (गोमूत्र वर्णका) होना चाहिए। हरा, धूम्र-वर्ण और

सफेद, रक्तवर्ण और कृमियुक्त नहीं होना चाहिए। पतला मल भी वैसे ही रोगका चिह्न है, जैसे सख्त, काली गांठकी शक्लमें।

स्वस्थ दशामें त्वचामें कोई बदबू नहीं आनी चाहिए, जैसी कि मांसाहारी जीवोंकी त्वचासे आती है। त्वचा नम होनी चाहिए, पर लसलसीहुई नहीं। स्पर्शमें हल्की, गरमऔर कोमल होनी चाहिए, रूखी नहीं। लचीली होनी चाहिए, बालोंवाले स्थानोंमें सुंदर और भरपूर बाल होने चाहिए। गंजापन रुग्ण शरीरका परिचायक है। स्वस्थ शरीरमें फेफड़े अपना काम विना किसी कठिनाईके पूरा करते हैं। हवा नथुनोंसे, जो उसके प्राकृतिक रक्षक हैं, जानी चाहिए। मुंह खुला रहना, चाहे दिनको, चाहे रातको, रोगका सबूत है।

कभी श्रम अधिक हो जानेपर स्वस्थ शरीर हमें थकानकी सही सूचना दे देता है। यह थकान कष्टकारक न होकर सुखद होती है और हमें आराम करनेकी, और अंतमें सोनेकी प्रेरणा देती है। स्वस्थ दशामें निद्रा शांत और गाढ़ होती है। स्वस्थ व्यक्ति जगनेपर प्रसन्न-मन, प्रसन्न-वदन तथा आत्म-तृप्त होता है, अलसाया औरपरेशान-हाल नहीं। स्वस्थ व्यक्ति कोई गंभीर मानसिक पीड़ा होनेपर रोकर शीघ्र हल्का हो जाता है। प्रकृतिने हमें आंसू आंतरिक कष्ट धो-वहाने को दिये हैं।

स्वस्थ मनुष्यके ये सारे चिह्न तुरंत अनुभूति द्वारा और बहुतेरे तो बिना किसी कृत्रिम औजारके आंखोंसे देखे जा सकते हैं। उपर्युक्त सारे लक्षण जीवित व्यक्तियोंको देखकर निश्चित किये गए हैं। मृत शरीरको लेकर किया जानेवाला निरीक्षण बेकार है।

उपर्युक्त लक्षणों और दशाओंसे युक्त पूर्ण स्वस्थ मनुष्यकी

शक्ल (डौल) भी सही होनी चाहिए। उसका शरीर पूर्णतया दोषरहित होना चाहिए।

अबतक मैं एक भी पूर्ण स्वस्थ मनुष्य नहीं पा सका हूं। औसत दर्जेके स्वस्थ मनुष्य तो मुझे प्रायः मिले हैं। मैंने उन्हींके आधार पर शरीरकी स्वस्थ (स्वाभाविक) आकृतिका अध्ययन किया है। कहा जा सकता है कि सौंदर्य-विज्ञानकी दृष्टिसे भी स्वस्थ शरीरकी आकृति ही आदर्श होती है। प्राचीन ग्रीक मूर्तिकारोंने हमें वास्तविक सुन्दर आकृतियां दी हैं, और इन्हींको हमारे वर्तमान मूर्तिकार आदर्श मानते हैं, न कि उन पेटू, खाऊ, मोटे-सोटे स्त्री-पुरुषोंको, जिन्हें आम तौरसे आज स्वस्थ समझा जाता है।

स्वाभाविक आकृति

पाठकोंको कुछ स्वाभाविक आकृतियां चित्र १, ३, ४, ६ और १४ में मिलेंगी। उनका वर्णन आगे दिया जा रहा है।

१. आकृति—चित्र १ की आकृति स्वाभाविक आकृति है। इसमें समूचे शरीरमें उत्तम अनुपात है। देखनेमें यह आकृति अति सुंदर मालूम होती है। इसके साथ चित्र २ की आकृतिको देखने पर वह कितनी भद्दी—बदशक्ल—जंचती है। शरीर पसरा हुआ है। पैर धड़की तुलनामें बहुत छोटे हैं। धड़ अस्वाभाविक रूपसे लंबा है और गर्दन तो करीब-करीब ग़ायब ही है।

स्वाभाविक आकृतिमें (चित्र १) सिर औसत आकारका है। गर्दन गोल है, न अधिक छोटी, न अधिक लंबी और घेरेमें यह लगभग पांवकी पिंडलीके बराबर है। छाती धनुषाकार है। पेट आगे निकला हुआ नहीं है और न धड़ नीचेकी ओर लंबा है। पांवोंकी बनावट मजबूत है, न वे आगे झुके हैं, न पीछे।

स्वाभाविक स्वस्थ व्यक्तिमें और चिह्न भी पाये जाते हैं।

सारे शरीरमें सुंदर अनुपात, (पैरोंसे सिरतक उत्तरोत्तर अधिकाधिक सुडौल) पूर्ण सम-प्रमाणता, अंगोंमें सर्वत्र सुंदर गोलाई।

सिर—सामान्य (आदर्शा-नुरूप) आकार, मस्तक—सपाट (चौरस) चर्बीकी गद्दीसे रहित, आँखें—विशाल, स्वच्छ (तनाव-रहित), नाक—सुगठित, मुंह—बंद (होठ सटे हुए), चेहरा—अंडाकार, कानोंके नीचेकी सीमा-रेखा स्पष्ट, गर्दन—गोल, सामान्य लम्बाई, छाती—पूर्ण विकसित, पैर—सीधे, गठीले, जांघोंपर सीमा-रेखा स्पष्ट।
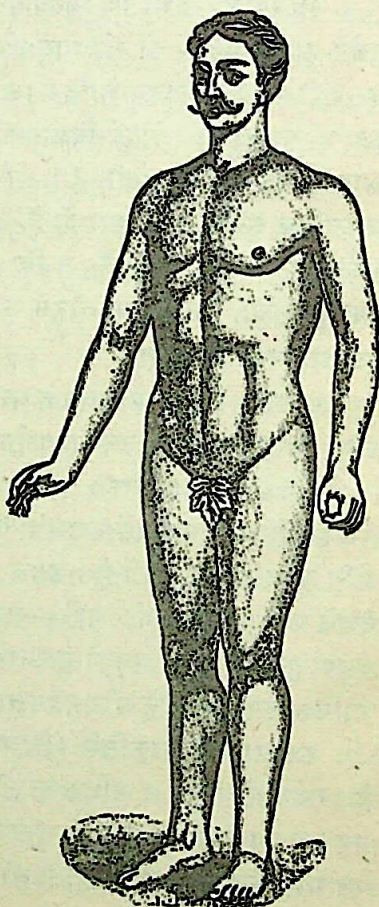
चित्र १—स्वाभाविक आदर्श आकृति
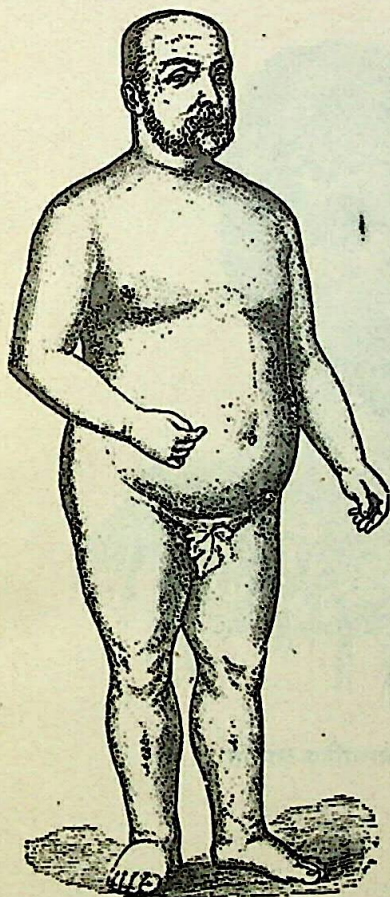
आकृति—बेडौल, भद्दी, फूली हुई (पिलपिली), सिर—अधिक स्थूल, मस्तक—झुका (दबा हुआ), चर्बीसे भरा, गद्दीवाला, ऊपरसे सिर गंजा, आंखें—अधमुंदी, नाक—सूजी हुई, मुंह-कुछ-कुछ खुला हुआ, चेहरा—कानोंके नीचे सीमा-रेखा अस्पष्ट, गर्दन—अधिक छोटी और मोटी, सिरको गर्दनसे अलग करनेवाली सीमा-रेखा अस्पष्ट, पेड़ू—तोंद निकली हुई, पैर—अधिक छोटे और मोटे।

चित्र २—समूचे शरीरमें दोष-संचय

चित्र ३—स्वाभाविक आकृति

चित्र ४—स्वाभाविक आकृति
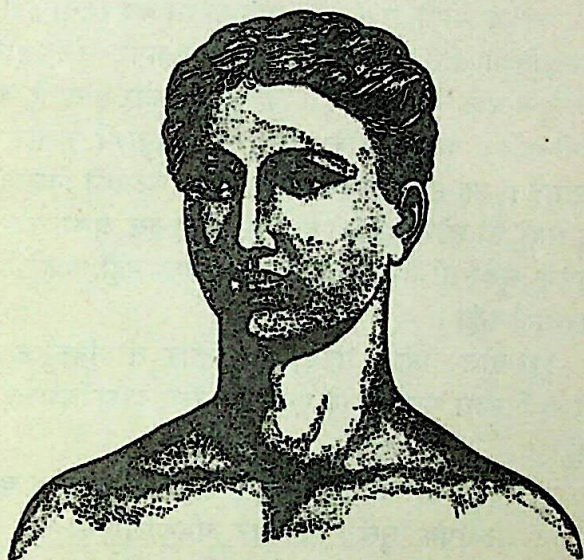
उसके माथेपर शिकन—झुर्री—नहीं होती और न सपाट चर्बीली गद्दी ही दिखाई देती है। आंखें स्वच्छ होनी चाहिए। उनमें धारियां नहीं होतीं। नाक चेहरेके बीचों-बीच और सीधी रहती है, न अधिक मोटी, न पतली। मुंह हमेशा बंद रहता है, दिनमें और रातको सोते समय भी। होठोंकी बनावट सुंदर होती है, वे अधिक मोटे नहीं होते हैं। चेहरा अंडाकार होता है, कोना-कोनी नहीं। कानके ठीक नीचे अलगाववाली लकीर साफ रहती है। यह सीमा-निदेशक-रेखा ही सौष्ठवकी निशानी है। यह चेहरे की शोभा बढ़ाती है। बहुतोंको इस प्रकारका चेहरा देखनेमें सुंदर तो लगता है, पर वे बतला नहीं सकते कि वह सुंदरता है कहां।

ठुड्डी गोल होनी चाहिए, कोणाकार तो बिल्कुल नहीं। सिरका पिछला भाग गर्दनसे एक स्पष्ट रेखा द्वारा विभक्त होना चाहिए।

२. रंग—चेहरेका रंग पाण्डु—पीला—नहीं होना चाहिए और न अत्यधिक सुर्ख। चेहरेपर चमकीलापन नहीं होना चाहिए।[1] चहरेपर ताज़गी होनी चाहिए। बुढ़ापे तक उसपर तेजस्विता रहनी चाहिए।

३. गतिशीलता—शरीरकी दशापर विचार करते समय उसकी गतिशीलताका विचार भी आवश्यक है। यदि शरीरकी किसी स्वाभाविक क्रियामें बाधा पड़ती है तो समझना होगा कि शरीरकी दशा स्वाभाविक नहीं है और उस अंगमें दोष-संचय हुआ है, खासतौरसे मुखाकृति-विज्ञानके निदानमें सिरके परिचालन-

१. यूरोपवालोंका स्वाभाविक रंग कुछ पीला-गुलाबी होता है।

का विशेष महत्त्व है। मुखाकृति-विज्ञानके अनुसार स्वास्थ्यकी जांचमें सिर निर्बाध रूपसे दाहिने, बायें घूमने योग्य होना चाहिए। सिरको उठानेमें गलेपर कोई तनाव नहीं होना चाहिए, और न गर्दनके नीचे झुकानेमें उसके पिछले भागमें।

शक्ल, रंग और गतिशीलतासे शरीरकी जांचका यह तरीका है।

शरीर में दोष-संचय

यदि शरीरकी आकृति और रंग स्वाभाविक नहीं रह गए हैं या उसकी गतिशीलतामें बाधा पड़ने लगी है तो यह इस बातका सबूत है कि शरीरमें दोष का संचय हुआ है। यह संचय किसी पदार्थ का ही माना जायगा। यही पदार्थ है जो शरीरकी आकृतिमें फर्क डालता है। यहां यह सवाल उठता है कि जो पदार्थ शरीरसे कोई संबंध नहीं रखता और इसीलिए दोष—विजातीय पदार्थ—कहलाता है, मनुष्यके शरीरमें आता कहांसे है? इन पदार्थोंके शरीरमें जानेका रास्ता वही है, जो दूसरे पदार्थोंके जानेका है।

पदार्थ शरीरमें मुख, नाक और त्वचाके रास्ते जाता है। नाक, फेफड़ों और त्वचा द्वारा हम श्वास—हवा—अंदर लेते हैं। मुंहसे शरीर ठोस और तरल पदार्थ लेकर पेटको सौंपता है। प्राकृतिक मार्गपर चलते रहनेसे दोष शरीरमें नहीं पहुंच पाता और पहुंच भी जाय तो शीघ्र बाहर निकाल दिया जाता है, क्योंकि प्रकृतिकी ओरसे शरीरमें ऐसा प्रबंध है कि हानिकर द्रव्य निकाल दिये जायं।

आंतें, मूत्राशय, त्वचा और फेफड़े स्वस्थ शरीरमें निरंतर काम करते रहते हैं और प्रत्येक बेकार पदार्थको, जिसकी शरीरको

कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है, बाहर निकालनेके काम-में लगे रहते हैं। फिर भी शरीरमें दोष अत्यधिक मात्रामें पहुंच जाने पर शरीर उसे बाहर निकालनेमें असमर्थ हो जाता है और उसका कुछ भाग अंदर रह जाता है।

बहुतेरे बच्चे तो जन्मसे ही दोष-संचय लिये हुए पैदा होते हैं। कहा जाय तो एक प्रकारसे वे रोगी ही पैदा होते हैं। इनमेंसे अधिकांश तो अकालमें ही कालके गालमें चले जाते हैं।

मनुष्यके लिए सबसे आवश्यक वस्तु खुराक है। इसके प्राकृतिक होनेसे शरीर भी प्राकृतिक रूपमें बढ़ता है। बच्चेकी वास्तविक प्राकृतिक खुराक तो मांका दूध ही है। आज दुर्भाग्य-वश बहुत-से बच्चे (खासतौर से शहरी जीवनमें) इससे वंचित ही रह जाते हैं, क्योंकि मांके शरीरमें अधिक दोष-संचयके कारण उसे दूध नहीं उतरता, या बिल्कुल कम उतरता है। आरम्भके महीनोंमें मांके दूधके बदले बच्चेकी सर्वोत्तम खुराक कच्चा, बिना उबला बकरी या गायका दूध है। उबले दूधका या कीटाणुरहित दूधका बच्चोंके स्वास्थ्यपर होनेवाला हानिकारक प्रभाव चित्र ४८ से ५१ तकमें दिखाया गया है। ये चित्र असली फोटुओंसे बने हैं। लेकिन कोई खुराक मांके दूधकी बराबरी तो कदापि नहीं कर सकती।

अप्राकृतिक खुराक कभी पूरी तरह नहीं पचती। नित्य वैसी खुराक लेते रहनेपर परिणाम बुरा होता है। शरीर उस खुराकके मलको ठीक तौरसे निकाल नहीं पाता। साथ ही, उस खुराकसे शरीरको वास्तविक पोषण-तत्त्व भी नहीं मिल पाते।

दोष शुरूमें शरीरके निष्कासन-भागों के निकट जमा होता है और कुछ समय तक तो छोटे उभारों—जैसे अतिसार, अति

स्वेद और अतिरिक्त पेशाब के द्वारा शरीरसे बाहर कर दिया जाता है। इस तरह कभी-कभी तो बड़े-बड़े संचय भी निकल जाते हैं, फिर भी कुछ तो प्रायः बच रहता है या नया द्रव्य पैदा हो जाता है। जिस भाग में यह द्रव्य—दोष—जमा होता है, उस भागमें उष्णता (गरमी) पैदा होती है (अतिसारका यह सीधा सबब है और दोषके रूप-परिवर्तनका भी)। दोष प्रकुपित होने लगता है और गैस बननी शुरू हो जाती है। यह गैस शरीर में फैल जाती है और शरीरसे पसीनेके रूपमें त्वचा द्वारा गैस-रूप बना हुआ दोष निकल जाता है। लेकिन कुछ हिस्सा फिर ठोसरूपमें शरीरमें जमा हो जाता है। यही वह भंडार द्रव्य है, जो शरीरको दोषपूर्ण करता है। संचित द्रव्य किस ओर एकत्र हुआ है, यह देखकर रोगीकी प्रकृति जानी जा सकती है। मेदे और बड़ी आंतोंके कमजोर हो जाने पर प्राकृतिक और पूर्ण खुराक भी ठीक तरहसे हज़म नहीं होती। ऐसा अधूरा पचा हुआ, शरीर द्वारा अभिशोषित सारा द्रव्य दोषका रूप ले लेता है। एक बार इस प्रकार विकारका एकत्र हो जाना शुरू हो जानेपर फिर यह सिलसिला तेजीसे बढ़ता है और शरीरमें गड़बड़ी आरंभ हो जाती है। बच्चोंके अनगिनत रोगोंका यही कारण है, जो शरीरके दोषोंको बाहर निकालनेके उद्देश्यसे होते हैं।

दूषित द्रव्य शरीरमें प्रायः श्वास, फेफड़ों और त्वचा, द्वारा भी प्रवेश पाता है। सामान्यतः तो वह निकलता जाता है, पर अक्सर अंदर जमा भी रह जाता है। पाचन-शक्ति अच्छी होनेपर तो शरीरमें फेफड़ों द्वारा गये दूषित द्रव्योंको निकालनेकी यथेष्ट शक्ति रहती है, लेकिन पाचन कमजोर रहनेपर तो यह असंभव होता है। अस्वच्छ हवा में रहकर हम दूषित पदार्थोंको शरीरमें

प्रवेशका अवसर देते हैं, ठीक उसी तरह, जैसे अप्राकृतिक खुराकके सेवनसे।

जब-तब शरीर गंदगी निकालनेके लिए कृत्रिम मार्ग बना लेता है, जैसे नासूर, खूनी बवासीर, रक्तपित्त, भगंदर, पांवोंका पसीजना वगैरह। ऐसी दशाओंमें शेष शरीर स्वस्थ लगता है। ये निर्गम-मार्ग हर सूरतमें तभी बनते हैं जब शरीरमें दोष-संचय काफी मात्रामें होता है। यह एक प्रकारसे शरीर द्वारा अपने-आप अपने ऊपर किया हुआ ऑपरेशन होता है और यह होता है तभी, जब उसका सक्रिय कारण मौजूद रहता है। इनको अकस्मात् बंद कर देनेपर निकलनेवाला विकार शरीरके किसी-न-किसी भागमें जमा हो जाता है। तुरंत उस स्थलपर सूजन आ जाती है, जलन होती है या मवाद पैदा होता है।

अब मैं अपने देखे हुए कुछ उदाहरण दूंगा।

एक रोगी लगभग दस सालसे खूनी बवासीरसे बड़ी तकलीफ उठा रहा था। खून अधिक गिरने लगनेपर उसने उपचार आरंभ किया। कौटुंबिक डाक्टरकी औषधियोंसे लाभ न होनेपर एक नामी चिकित्सककी सलाहसे उसने 'डर्माटोल मलहम' इस्तेमाल किया। उससे बवासीर जल्द ही जाता रहा। मरीजने अपनेको नीरोग मान लिया। पर कुछ ही दिनों बाद उसने देखा कि उसके गलेमें एक अजीब सूजन हो गई है। उसे लगा कि बवासीरके अकस्मात् चले जानेसे इस सूजनका कुछ संबंध है। वह सूजन इतनी बढ़ी कि कुछ महीनों बाद उसका गला घुटने लगा और हालत नाजुक हो गई। कारण तो सीधा था, दोषने जब आंतोंसे निकालनेका मार्ग बंद पाया तो बवासीरके लुप्त होनेके बाद उसने जमा होनेके लिए गर्दनका स्थान चुन लिया। यदि वह दोष

गर्दनके पिछले मार्गसे मस्तिष्ककी ओर गया होता, तो जरूर उसने दिमागपर बुरा असर डाला होता।

कुछ दोस्तोंकी सलाहसे उसने घर्षण-स्नान (मेहन, कटि) अपनाये। पहले ही स्नानमें उसे काफी आराम मिला। कारण, वह दोष-संचय थोड़े ही समयका होनेके कारण अभी ठोस या सख्त नहीं हुआ था, अन्यथा आराम होने में देर लगती।

दूसरा उदाहरण। एक स्त्री काफी दिनोंसे अतिसार-ग्रस्त थी। दोषोंसे भरे शरीरकी गंदगी—दोष-संचय—को निकाल डालनेका यह शरीरका निजी प्रयास था। डाक्टरने दवा देकर अतिसार अच्छा कर दिया। परिणामस्वरूप उसे घोर कब्ज हो गया। अब दोष ऊपरकी ओर चला और तीन हफ्तेके अंदर गर्दनपर एक बड़ी गिल्टी (सूजन) हो गई (देखिये चित्र १२)। रोगिणीके ध्यानमें आ गया कि यह गांठ उस दवाकी देन है, जिसके कारण अतिसार गया था। यदि गर्दनपर वह गांठ डायरिया दबनेके बाद तुरंत बननेके बजाय धीरे-धीरे बनी होती तब तो निस्संदेह रोगीने समझा होता कि दी गई दवाने लाभ पहुंचाया है। दुर्भाग्यवश बहुत थोड़े लोग ही समझ पाते हैं कि दवाओंका जहर कितनी हानि कर सकता है।

पैरोंका पसीजना रोक दिये जानेसे भी प्राय: गर्दनमें शोथ आ जाती है। कभी-कभी सिरमें दोष एकत्र हो जाता है, जिससे नाड़ी-दौर्बल्य या मानसिक विकृति उत्पन्न हो जाती है। प्राय: यह भी होता है कि दोष फेफड़ोंमें, हृदयमें या दूसरे भीतरी अंगोंमें चला जाता है। यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि भीतरी अवयवोंके अधिकांश रोग—खासकर फेफड़ोंकी टी० बी का रोग—ऊपर बताये हुए तरीकेसे दूसरे रोगोंके बाहरी लक्षणोंके

दबानेसे ही होते हैं। ऐसे लक्षणोंमें कफको गिना जा सकता है। थूके जानेवाले कफमें बड़ी मात्रामें दोष निकलता है। यदि कफ-नाशक औषधियों द्वारा अतिरिक्त गर्मी पहुंचाकर, या ताजी हवा रोककर, कफको दबा दिया जाता है तो उसका परिणाम शरीरके लिए बहुत हानिकारक होता है, विशेषतः फेफड़ोंके लिए। दोष सीधे भी रक्तमें प्रवेश पा सकता है। उस दशामें साधारण ढंगसे अंदर जानेकी अपेक्षा वह अधिक हानिकर सिद्ध होता है। इसका एक विशेष उदाहरण है—सांप काटना। इस दशामें जहर सीधा शरीरमें पहुंच जाता है, तेजीसे काम करता है और शरीरमें एक उफान और तेज बुखार ला देता है। यदि उतना ही जहर आदमीके पेटमें पहुंचाया जाय तो विशेष हानि न होगी, क्योंकि पेटमें यह अहानिकर हो जाता है और उसका बड़ा भाग आंतोंसे बाहर निकल जाता है। यही हालत पागल कुत्तेके काटनेसे होती है।

सभी दूषित पदार्थ इस प्रकार सीधे रक्तमें जानेपर इतनी जल्दी या ऐसा भयंकर प्रभाव नहीं डालते, फिर भी यह हानिकर तो हमेशा ही होता है। किसी आकस्मिक कारणसे दूषित पदार्थका घावों द्वारा रक्तमें प्रवेश कर जाना संकटजनक होता है। इसे हमें अपनी कोशिशभर रोकना चाहिए। पर ऐसे पदार्थको जानबूझकर रक्तमें प्रवेश कराना तो एक भारी जुर्मके समान है। टीके या इन्जेक्शनों द्वारा विषों—दूषित पदार्थों—को शरीरमें पहुंचाना एक ऐसा भयंकर कार्य चल पड़ा है कि इतिहासमें ढूंढ़नेसे भी इसकी मिसाल नहीं मिलेगी। यह एक दुखद बात है कि सभ्यताने अपनेको यहांतक गिरा दिया है। यदि सारी मनुष्य-जातिको रुग्ण होनेसे बचाना हो और उसे अधिक कमजोर न

होने देना हो तो यही वह वक्त है जबकि टीकेका विरोध होना चाहिए। शरीर यदि किसी हदतक स्वस्थ हो तो वह उस विष-का कुछ अंश निकालनेमें समर्थ होगा। सामान्यत: इन्जेक्शनके स्थानपर सूजन आकर वह स्थान पक जाता है। फिर भी, जहर-का बहुत भाग प्राय: शरीरमें रह जाता है। शरीरमें जीवनी-शक्तिकी कमी होनेपर वह उस विषाक्त पदार्थको मुश्किलसे ही निकाल पायेगा औरउसका बड़ा अंश शरीरके भीतर बच रहेगा। ऐसे ही लोगोंको, पहले टीकेको 'असफल' बतलाकर, दुबारा और तिबारा टीका लगाया जाता है। वास्तवमें तो यहां 'सफलता' बहुत अधिक हुई कि शरीरने स्वयं उस विषको निकाल दिया, पर दुर्भाग्यवश समझा गया उल्टा। पहले मौजूद दोषमें और दोष (दुबारा और तिबारा टीका देकर) जोड़ दिया गया।

दोष-संचयके कारण शरीरमें होनेवाले परिवर्तन

पूर्वोक्त कथनानुसार दोष अपनी स्थितिके लिए उपयुक्त स्थानकी खोज करता है। द्रव्यका यह संग्रह पहले पेड़ूमें एकत्र होता है। निष्कासन-मार्गके नज़दीक जमा होना शुरू होकर विकार दूरतक बढ़ने लगता है, जैसे, सिर और हाथ-पैरोंकी ओर। कोई विशेष परिस्थिति पैदा न होनेपर तो यह क्रिया बहुत धीरे-धीरे होती है। द्रव्यका झुकाव प्राय: शरीरकी चरम सीमाकी ओर जानेका रहता है। इस प्रयासमें वह अपना मार्ग गर्दनके तंग भागसे बनाता है। वहां वह जमाव आसानीसे देखा जा सकता है। पहले तो वह भाग बढ़ा हुआ लगता है, फिर वह सूजन अथवा पिंड-रूपमें हो जाता है। आगे चलकर वह पिंड नीचेके अवयवको बिल्कुल ढंक लेते हैं और उन भागोंका विश्लेषण और सकोचन होने लगता है। इस दशामें अनाड़ी पर्यवेक्षक सहजमें धोखा खा

सकता है। वह कोई संचय नहीं मानेगा। फिर भी ध्यानसे जांचने-पर हमेशा बड़ी रेखाएं दिखाई देंगी, जिनके कारण गर्दनकी अस्वाभाविक स्थिति होगी। त्वचा भी बदरंग होगी, प्राय: भूरी, स्लेटी या अतिरिक्त सुर्ख। कभी-कभी साधारण बुद्धिसे भी हम संचयकी प्रकृतिको समझ सकते हैं, फिर भी रोगको स्पष्ट रूपसे समझनेके लिए प्रत्येक विवरणको ध्यान देकर देखना चाहिए।

शोथ गर्दन और सिरमें वही शक्ल लेती है, जो पेड़ू में और दोनों भागोंमें समान रूपसे बढ़ती है। फिर भी कभी-कभी पेड़ू का संचय घटता है और गर्दनवाला बढ़ता है। इधर जल-चिकित्सा-से गर्दनका संचय घटने लगता है और उसी अनुपातसे पेड़ू का बढ़ने लगता है।

दोष पेड़ू से सिरकी ओर बढ़नेकी हालतमें हमेशा एक ही मार्ग नहीं पकड़ता। यह संभवत: उन-उन अवयवोंकी जीवनी-शक्तिपर निर्भर करता है, जिधरसे कि दोष गुजरता है। कुछ-कुछ आदमीके सोनेकी करवटकी दिशापर भी निर्भर करता है। दोष शरीरके सामनेके भागमें बढ़ सकता है अथवा बगल या पीछेके भागमें। इस दृष्टिसे हमें तीन प्रकारके संचय मिलते हैं :

१. सामनेका—अग्र-संचय।

२. बगलका—दोनोंमेंसे किसी बगलका संचय (वाम पार्श्व-संचय, दक्षिण-पार्श्व-संचय)।

३. पीठका—शरीरके पीछेके भागका—पृष्ठ-संचय।

बगलका संचय दाहिनी या बाईं ओर हो सकता है। साधारणत: हम केवल एक प्रकारका संचय नहीं पाते। प्राय: वह मिला-जुला ही होता है, जैसे सामने या बगलमें, या बगलमें या पीछे, या कभी-कभी सारे शरीरमें। फिर भी भिन्न प्रकारोंको
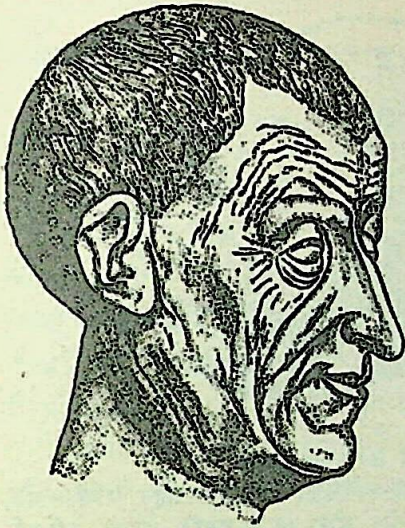
सिर—आकार सामान्य, मस्तक—झुर्रीदार, आंखें—सामान्य, नाक—सामान्य, गाल—सिकुड़नें पड़ी हुईं, मुंह—सामान्य, चेहरा—उम्रके हिसाबसे सामान्य, सीमा-रेखा अधिक पीछे-की ओर, गर्दन—सामने-की ओर बढ़ी, गुद्दीकी सीमा-रेखा सामान्य।

चित्र ५—अग्र (सामनेका) संचय

चित्र ६—स्वाभाविक आकृति

चित्र ७—अग्र-संचय

सिर—आकार सामान्य, मस्तक—सिरे पर गंजा, चर्बी-रहित, आंखें—मंद, नाक—सुंदर, मुह—नीचेका होठ मोटा (सूजा हुआ), ठुड्डी बढ़ी हुई, चेहरा—सीमा-रेखा कानसे बहुत पीछे, चेहरेका निचला अर्ध भाग बहुत भरा हुआ, गर्दन—सामने अधिक बढ़ी हुई, गुद्दीकी सीमा-रेखा सामान्य।
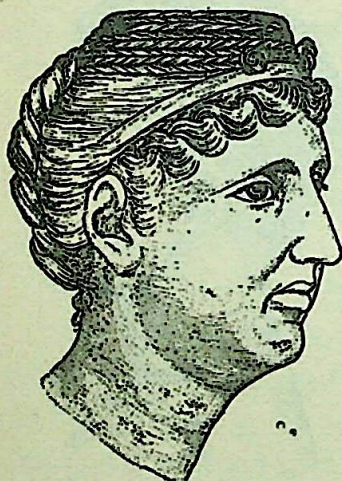
सिर—आकार सामान्य, मस्तक—चौरस, चर्बी-रहित, आंखें—सामान्य, नाक—सामान्य, ओठ—अधिक मोटे, चेहरा—बायेंकी अपेक्षा दाहिनी ओर अधिक भरा और लंबा, सीमा-रेखा गायब, गर्दन—सामने को बहुत बढ़ी हुई, थोड़ी बगलमें भी, गुद्दीकी सीमा-रेखा सामान्य।

चित्र ८—अग्र और पार्श्व-संचय

समझनेके लिए हम हरएकका अलग-अलग विचार करेंगे।

१. अग्र (सामनेके) भागका संचय

(चित्र ५, ७, ३६ और ३७)

सामनेके संचयसे हमारा तात्पर्य है, जो पूरी तरह या खास तौरसे शरीरके आगेके हिस्सेसे संबंधित हो। चित्र ५ इसका उदाहरण है। सही-सही तुलनाके लिए चित्र ६ में स्वाभाविक आकृतिका चित्र दिया गया है। पाठकको चाहिए कि दोनों चित्रोंका अंतर ध्यानपूर्वक मिलाकर देखें।

सामनेके संचयमें गर्दन सामनेकी ओर कुछ बड़ी (चित्र ७) हो जाती है। चेहरा भी अधिक बड़ा और भारी हो जाता है। मुंह प्रायः लंबा हो जाता है, क्योंकि सारा दूषित द्रव्य वहीं आकर जमा होता है। चेहरेको गर्दनसे अलग करनेवाली रेखा एक विशेषता रखती है। सामनेके संचयमें यह रेखा साधारणकी अपेक्षा प्रायः पीछेकी ओर हटी हुई होती है (चित्र ७ और ८)। यदि सामनेका संचय पूरा-पूरा व्यक्त होता है तो चेहरा बहुत फूल जाता है और माथेपर चर्बीदार गद्दी बन जाती है। पर पीछेके संचयमें भी हम यह गद्दी पाते हैं। इसलिए यह कोई विशेष चिह्न नहीं है। इससे केवल यह प्रकट होता है कि संचय मस्तिष्कके भीतरतक पहुंच गया है।

बहुतोंमें गर्दनपर पिंड बन जाते हैं (चित्र १० और ३८) इससे प्रकट होता है कि संचय भयंकर दशामें है। दूषित पदार्थके सूख जानेपर तो मांस-पेशियां क्षीण होने लगती हैं। यह भी हो सकता है कि सीमा-निदेशक रेखा जबड़ेके पास फिर स्वाभाविक रूपमें आ जाय। फिर भी गर्दन परके पिंड
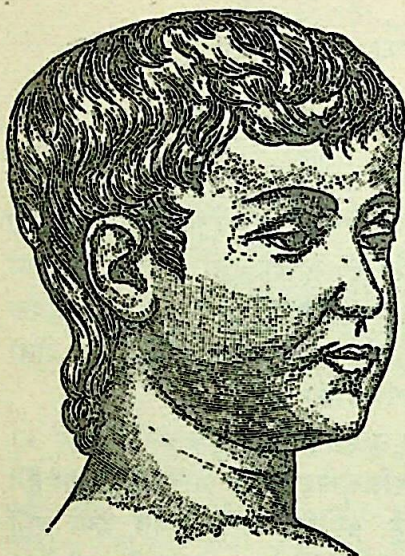
सिर—अधिक बड़ा, विशेषत: ऊपरी हिस्सा (अकाल-प्रौढ़ताका चिह्न) मस्तक — चर्बीसे भरा हुआ, आंखें—कुछ दबी हुई, नाक—सामान्य, मुंह—सामान्य, चेहरा—सीमा-रेखा कानके बहुत पीछे, गर्दन—सामान्य (पर सिर-पर खिचाव, पीछे झुके होनेके कारण) गुद्दीकी सीमा-रेखा सामान्य।

चित्र ९—अग्र-संचय

सिर—ऊपरका हिस्सा अधिक बड़ा, मस्तक—सिरेपर चर्बीसे भरा, आंखें—सामान्य, नाक—सामान्य, मुंह—सामान्य, चेहरा— सीमा-रेखा पिंडों-के कारण अवरुद्ध, गर्दन—असमान, सिरका पिछला भाग—मुक्त।
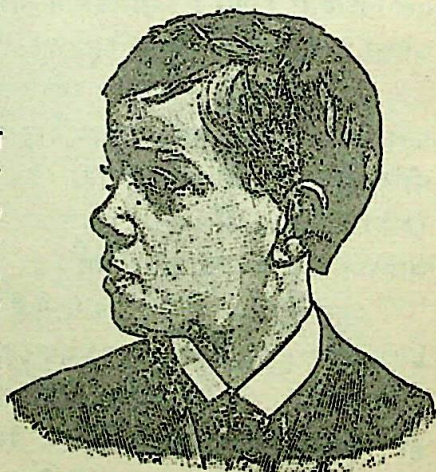
चित्र १०—अग्र और पार्श्व-संचय

आकृति—अनुपात सामान्य, सिर—बेडौल, विशेषतः ऊपरी हिस्सेपर, मस्तक—चर्बीसे भरा, आंखें—मुंदी (अंध), नाक—सामान्य, मुंह—सामान्य, चेहरा—सीमा-रेखा कानके बहुत पीछे, गर्दन—में सख्ती, पेड़ू—बहुत निकला हुआ, शरीर पर टीकेके कारण झुर्रियां।
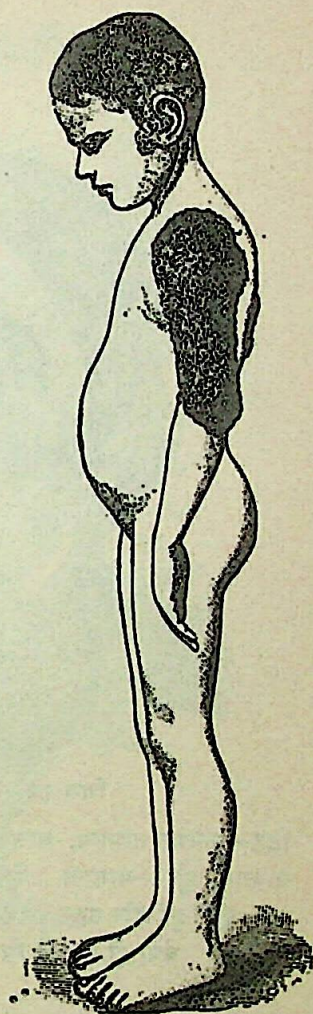
चित्र ११—सामनेका संचय
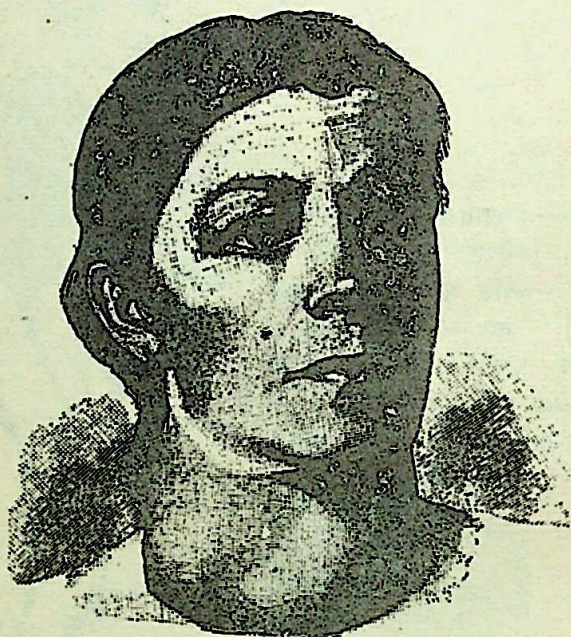
चित्र १२—अग्र और पार्श्व-संचय

सिर—लगभग सामान्य, मस्तक—सामान्य, आंखें—सामान्य, नाक—सामान्य, मुंह—सामान्य, चेहरा—सीमा-रेखा सामान्य, गर्दन—बहुत बड़ी, फूली हुई और सख्त, संचय सिर्फ गर्दन तक पहुंच पाया है, जिससे घेघा हो गया है, सिर संचयसे बिलकुल मुक्त है।

(चित्र १२ वाली स्त्रीकी लड़की) सिर—ज़रा-सा बड़ा, मस्तक—कुछ चर्बीसे भरा, आंखें— दबी हुई, नाक— सामान्य, मुंह—कुछ खुला, चेहरा — सीमा-रेखा सामान्य, गर्दन— फूली हुई, घेघा, मिश्र संचय, माताकी भांति कुछ दोष सिरमें प्रवेश कर चुका है।
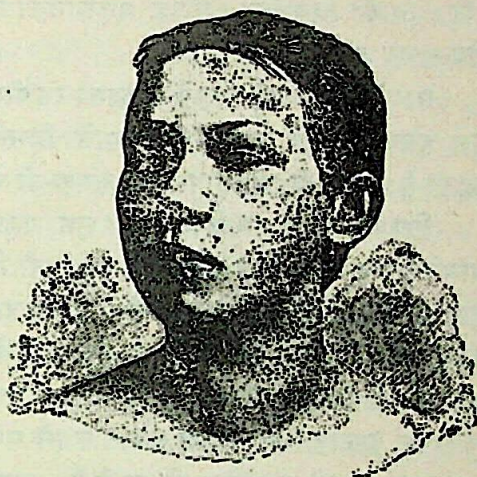
चित्र १३—अग्र और पार्श्व-संचय
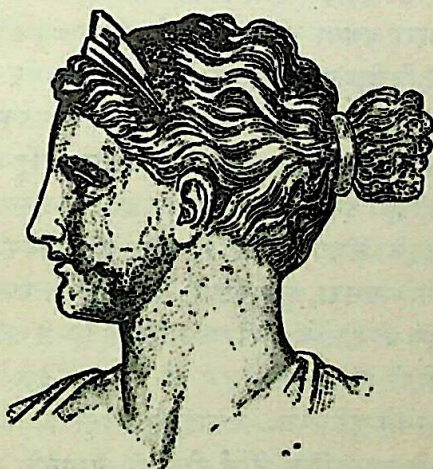
चित्र १४—स्वाभाविक आकृति

और त्वचाकी विवर्णता हमें यह बतलानेंको काफी है कि वहां दोष-संचय बड़ी मात्रामें है।

सामनेंके संचयकी दशामें त्वचाका रंग पीला या अतिरिक्त सुर्ख होता है और अधिक संचयवाले हिस्सोंमें बड़ा तनाव रहता है। साथ ही, चमड़ीपर एक चमक-सी रहती है।

सिरकी परिचालन-क्षमता भी एक महत्त्वपूर्ण चिह्न है। सामनेके संचयमें सिरको सरलतासे पीछे नहीं किया जा सकता। ऐसा करनेंका यत्न करनेंपर गर्दनमें बड़ा खिचाव प्रतीत होता है (चित्र ३८)। ऐसी स्थितिमें बड़े और छोटे पिंड दिखाई देंगे, जो यों नहीं दिखाई देते।

इस प्रकार सारा चेहरा समान रूपसे अथवा कुछ विशेष भाग इस संचयसे प्रभावित हो सकते हैं। जब-तब संचय केवल एकतरफा होता है, उस दशामें चेहरा एक ओरसे दूसरी ओर की अपेक्षा भरा अथवा लंबा लगता है (चित्र ८)।

रोगकी विशिष्टता संचयके स्वरूपपर निर्भर करती है। शरीरके अग्रभागमें संचय होनेपर दोष पेटसे सिरतक और नीचे पांवोंतक फैल जाता है। हमारी अधिकांश हड्डियां शरीरके अग्रभागमें ही हैं। इसलिए उन सबपर दोषका असर पड़ता है। अतः अग्रभागके संचयमें कोई भी तीव्र रोग होनेकी संभावना रहती है, जैसे—खसरा, सुर्ख बुखार, डिप्थीरिया, फेफड़ोंकी सूजन इत्यादि। इन बीमारोंके शरीरके सामनेके हिस्से अधिक पीड़ित होंगे। बच्चोंकी रुग्ण दशामें हम इसे स्पष्ट देख सकते हैं कि सामनेके हिस्सेमें फुन्सियां—अलाई या अम्हौरी—निकलती हैं।

बहुत-से तथाकथित जीर्ण रोग भी सामनेके संचयसे होते हैं, विशेषतः गलें और गर्दनके। कभी-कभी मुख-संबंधी रोगका

L18L 15249

कारण भी सामनेका संचय होता है। आरंभिक दशामें प्राय: सिर्फ ठुड्डी प्रभावित होती है। सामनेके संचयमें दांत नष्ट होते हैं। विशेषत: पहले नीचेकी पंक्तिके होते हैं। (चित्र ५ और ७ में नीचेके दांत बहुत कच्ची उम्रमें ही क्षय हो गये हैं।) नाड़ियों और आंखोंके रोग भी जब-तब होते हैं। संचयके सिरके सर्वोच्च भागमें पहुंच जानेपर तो सिर गंजा होने लगता है, विशेषत: सामनेके हिस्सेके बाल गिरने लगते हैं।

केवल सामनेके संचयमें मानसिक विकृति होना असंभव है।

सामने संचयके बावजूद मार्मिक अवयव प्राय: स्वस्थ रहते हैं, क्योंकि दोष-संचय प्राय: गालोंमें और माथेपर होता है। उस दशामें उन हिस्सोंमें रोग होता है, विशेषकर सिर-दर्द होता है और गालोंपर फुड़ियां (मुहांसे) निकलती हैं, विशेषत: रोगी-को ऋतु-परिवर्तन (तापकी कमी-बेशी) सताती है।

कभी-कभी दोष-संचय बहुत धीरे बढ़ता है। उस दशामें व्यक्ति अधिक कष्ट अनुभव किये बिना उपर्युक्त रोगोंको भोगता रह सकता है। पर आगे चलकर शरीरके उस हिस्सेमें, जिसमें पहले अधिक संचय नहीं था, एकाएक विकार पैदा हो जाता है।

सामनेके संचयका दूर करना अपेक्षाकृत सहज होता है। इसके कारण उत्पन्न हुए रोग साधारणत: उतने खतरनाक नहीं होते। सामनेके संचयसे संबंध रखनेवाली बच्चोंकी बीमारियां और अन्य ज्वर-संबंधी रोग 'सौम्य रोग' गिने जाते हैं। जल-चिकित्सा द्वारा सामनेका संचय कुछ ही हफ्तोंमें दूर किया जा सकता है। बहुतोंको इस बातपर आश्चर्य होता है कि क्यों एक रोगी जल-चिकित्सा-विधिसे इतनी शीघ्रतासे अच्छा हो जाता है और दूसरा धीरे-धीरे क्यों

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।
आगत क्रमांक........ 1920
दिनांक

अठारह सालसे मुखकी खुजलीसे पीड़ित एक रोगीको, जिसको यह रोग सामनेके संचयके कारण हुआ था, मैं कुछ ही सप्ताहोंमें आराम कर सका था। लेकिन यदि कोई अंग बिल्कुल नष्ट हो गया है तो उसे नया नहीं किया जा सकता, जैसे टूटे हुए दांत फिर नहीं आ सकते, लेकिन सिरके बाल वर्षोंकी गंजके बाद भी फिर उगते देखे गए हैं।

२—पार्श्व-संचय

(चित्र ८ और १५)

इस संचयकी दशामें गर्दन बढ़ जाती है। प्रायः उस हिस्सेके और भाग भी फैल जाते हैं, जिससे सारा शरीर बेडौल लगने लगता है। चित्र १७ में यह स्पष्ट दिखाई देता है। इसमें सारा बायां भाग दाहिनेकी अपेक्षा चौड़ा है। चित्र १६ में चेहरे-का सारा दाहिना हिस्सा बायेंकी अपेक्षा लंबा और चौड़ा है। पैरोंमें यह अधिक साफ दिखाई देता है। इसके कारण सिर शरीरके मध्यमें नहीं है। संचयसे प्रभावित दिशामें जांघपर पैरों-से धड़को अलग करनेवाली सीमा-रेखा साफ नहीं है, क्योंकि वहां संचय अधिक मात्रामें है। सिर भी धीरे-धीरे एक तरफको बढ़ रहा है। गर्दन तथा सिरपर पिंड बन गए हैं (चित्र १८)। सिरको घुमवाकर पार्श्व-संचयकी ठीक जांच की जा सकती है, क्योंकि इससे गर्दनके उस हिस्सेमें खिचाव होता है। साधारणतः उभरी हुई नसोंको देखना चाहिए, जो साफ बतलाती हैं कि दोष-संचय-ने कौन-सा रास्ता लिया है और वह किधर जायगा।

साधारणतः पार्श्व-संचयका परिणाम सामनेके संचयकी अपेक्षा अधिक खतरनाक होता है और उसे दूर करनेमें भी कठिनाई
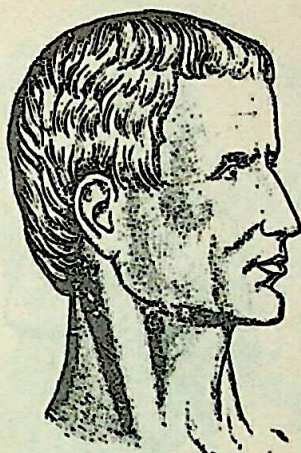
चित्र १५— पार्श्व-संचय

सिर—आकृति सामान्य, मस्तक—सामान्य, आंखें—सामान्य, नाक—सामान्य, मुंह—सामान्य, चेहरा—सीमा-रेखा सामान्य, गर्दन—मोटी रेखाएं, एक तरफ कड़ी।
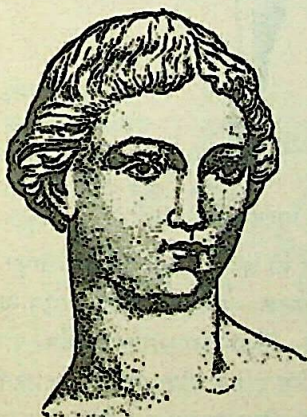
सिर—आकृति सामान्य, दाहिनी ओर झुका हुआ, मस्तक—सामान्य, आंख—सामान्य, नाक—सामान्य, चेहरा—दाहिनी ओर अधिक लंबा, दाहिनी ओरकी सीमा-रेखा अस्पष्ट, गर्दन—दाहिनी ओर अधिक फूली हुई, सख्त।

चित्र १६—दक्षिण पार्श्व-संचय
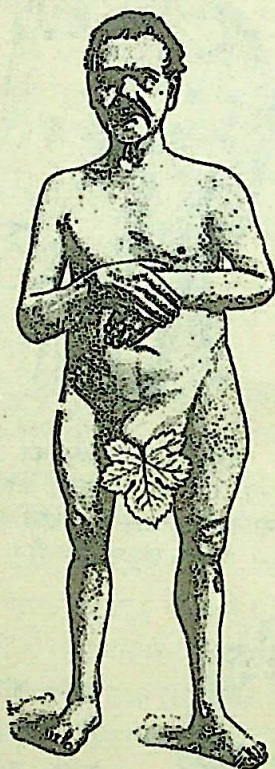
चित्र १७—वाम पार्श्व-संचय

आकृति—एकतरफी, बायां भाग दाहिने की अपेक्षा चौड़ा, सिर—आकृति सामान्य, शरीरके मध्य भागमें नहीं है, मस्तक—सामान्य, नाक—सामान्य, आंख—सामान्य, मुंह—सामान्य, चेहरा—सीमा-रेखा सामान्य, गर्दन—बाईं ओर अधिक बढ़ी हुई, कंधे—बायां दाहिनेसे अधिक चौड़ा, शरीर—दाहिनी ओरसे बायां भाग विस्तृत, बाईं जांघ की सीमा-रेखा गायब, पेड़ू—उभरा हुआ, बाईं ओरका संचय प्रकट कर रहा है, पैर—दाहिनेसे बायां मोटा ।

चित्र १८—बगल और सामनेका स्पष्ट संचय

सिर—कुछ अधिक बड़ा, मस्तक—चर्वी भरा, आंखें—दवी, नाक—सामान्य, मुंह—विकृत, चेहरा—सीमा-रेखा अस्पष्ट, ठुड्डी—परिवर्धित, गर्दन—लगभग गायब, मोटी रेखा और दाहिनी ओर मस्सा।

सिर—वहुत बड़ा, मस्तक—चर्बीसे भरा, आंखें—दवी, नाक—कुछ अधिक बड़ी, मुंह—खुला, चेहरा— सीमा-रेखा सामान्य, गर्दन—शरीरकी भांति ही मोटी, पिंडोंवाली।
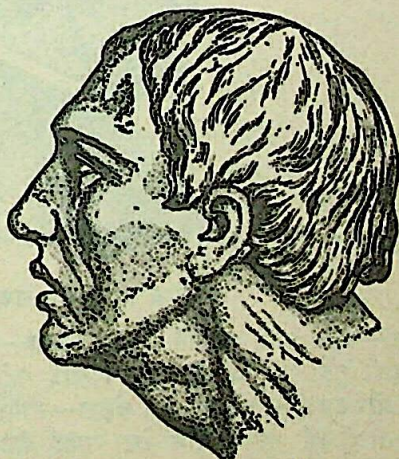
चित्र १९—अग्र और पार्श्व-संचय

सिर—कुछ अधिक बड़ा, मस्तक—चर्बीसे भरा, आंखें—मंद, दबी हुईं, नाक—सामने बहुत मोटी, मुंह खुला, पर कुछ दिखाई नहीं देता, चेहरा—सीमा-रेखा गायब, गर्दन—गुद्दी दोषसे भरी, सीमा-रेखा गायब, सिर दाहिनी या बाईं किसी ओर नहीं घुमाया जा सकता, पीठ—कंधे गोल।

चित्र २०—पृष्ठ-संचय
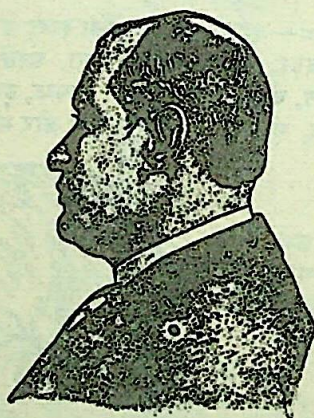
चित्र २१—पृष्ठ-संचय

सिर—बहुत बड़ा, सामने झुका, मस्तक—चर्बीसे भरा, आंखें—कुछ निकली हुईं (पर अच्छी तरह दिखाई नहीं देतीं), नाक—सामान्य, मुंह और ठुड्डी—कुछ बढ़े हुए, चेहरा—सीमा-रेखा गायब, गर्दन—सिर जितनी ही बड़ी, गुद्दीकी सीमा-रेखा गायब, पीठ—कंधे गोल।
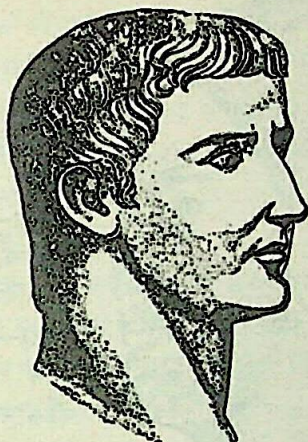
चित्र २२—पृष्ठ और पार्श्व-संचय

सिर—बहुत बड़ा, विशेषतः पीठकी ओर, मस्तक—चर्बीसे भरा, बहुत चौड़ा, आंखें—सामान्य, नाक—सामान्य, मुंह—सामान्य, चेहरा—सीमा-रेखा सामान्य, गर्दन—बहुत मोटी, गुद्दीकी सीमा-रेखा गायब है, बगलका हिस्सा विचित्र रूपसे बड़ा।

सिर—लगभग सामान्य, मस्तक—सामान्य, आंखें—सामान्य, नाक—सामान्य, मुंह—सामान्य, चेहरा—सीमा-रेखा सामान्य, गर्दन—कुछ अधिक मोटी, गुद्दीकी सीमा-रेखा लगभग मिट-सी गई है।

चित्र २३—पृष्ठ-संचय
(आकृति २२ का युवावस्थाका चित्र)
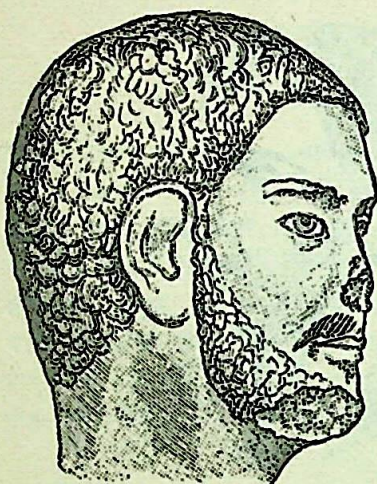
सिर—आकृति सामान्य, पर पीछेकी ओर अधिक बड़ा, मस्तक—सामान्य, आंखें—सामान्य, नाक—मूर्तिमें टूटा मिला, मुह—सामान्य, चेहरा—सीमा-रेखा सामान्य, गर्दन अधिक मोटी, गुद्दी-की सीमा-रेखा गायब ।

चित्र २४—पृष्ठ-संचय

सिर—अधिक बड़ा, विशेषतः पिछला हिस्सा, मस्तक—कुछ चर्बीसे भरा, आंखें—सामान्य, मुंह—सामान्य, चेहरा—सीमा-रेखा सामान्य, गर्दन—अधिक मोटी, गुद्दीकी सीमा-रेखा गायब ।

चित्र २५—पृष्ठ और पार्श्व-संचय
(प्राचीन रोमन सिर)

होती है। संचयकी दिशाके दांतोंमें दर्द होने लगता है। दांत क्षय होने लगते हैं। पार्श्व और सामनेके संचयके मिल जानेपर प्रायः बहरापन आ जाता है। ऐसी दशा में कानोंकी ओर बढ़ती हुई सूजन अक्सर दिखाई देती है। आंखोंपर भी शीघ्र प्रभाव पड़ता है, भूरा या काला मोतियाबिन्द हो जाता है, जो स्वभावतः संचयग्रस्त पार्श्वकी ओर पहले होगा।

यदि सिरका आधा हिस्सा पूर्णतया संचयग्रस्त हो तो परिणाम होगा आधासीसी, यानी सिरके सिर्फ एक भागमें दर्द। ऐसा सिर-दर्द बिना किसी विशेष परिवर्तनके वर्षोंतक बिना किसी अधिक हानि-के चलता रह सकता है, यहांतक कि वहां संचय इतना बढ़ जाता है कि फिर उस द्रव्यको अन्यत्र जानेको मजबूर होना पड़ता है।

मेरी एक परिचित स्त्री पंद्रह साल अधकपारीके दर्दसे पीड़ित रही। डाक्टरोंकी दवा-दारू से उसे कोई राहत न मिली। कौटुंबिक डाक्टर उसे सिर्फ तसल्ली दिलाता रहा कि समय पाकर यह अपने-आप चला जायगा। हुआ भी यही कि पंद्रह सालके बाद अध-कपारी तो चली गई, पर साथ ही अंधेपन आ घेरा। उसकी आंखोंकी रोशनी जाती रही। किसीने यह खयाल तक नहीं किया कि उस अधकपारी और इस अंधेपनका भी कोई संबंध है। सिर्फ अफसोस करते रहे कि बेचारी एक तकलीफसे छुटकारा पाकर इस नई विपत्ति में फंस गई। लेकिन मामला तो बिल्कुल साफ था। दोष-संचय आंखोंकी ओर बढ़ आया था। उसका मजबूत ढांचा इतने दिनों तक उसे एक जगह रोक रहा था।

बाईं ओरका संचय प्रायः त्वचाकी सक्रियताको मंद कर देता है, इसलिए दाहिनी ओरकी अपेक्षा यह अधिक भयंकर होता है। दाहिनी बगलके संचयमें पैरोंका पसीजना आम बात है।

दाहिनी ओरके संचयमें भीतरी ज्वर प्राय: बाईं ओरके संचयकी तुलना में कम रहता है। लेकिन यह दाहिनी ओरके संचयमें किसी कारणसे पैरोंका वह पसीजना बंद हो जाय तो हालत तत्काल बिगड़नें लगती है।

३. पीठका संचय

(चित्र २०)

तीनों प्रकारके संचयोंमें पीठका संचय सबसे भयंकर होता है। यह व्यक्तिकी शक्लमें अनेक प्रकारके परिवर्तन करता हुआ पीठपर ऊपरकी ओर बढ़ता है। कभी-कभी सिरकी ओर न जाकर पीठमें रह जाता है। उस दशामें वहां सूजन हो जाती है। ऐसी सूजन कोई भी शक्ल पकड़ सकती है। कंधे गोल हो सकते हैं, कूबड़ तक निकल सकता है। संचय सिरतक न पहुंचे तो सौभाग्य ही समझना चाहिए, क्योंकि वहां पहुंचनेपर हालत भयंकर होने लगती है। दोषके सिर तक पहुंच जानेपर गर्दनका पिछला हिस्सा मोटा हो जाता है और गर्दन तथा सिरके पिछले भागकी निर्देशक रेखा गायब हो जाती है। शनैः-शनैः वह स्थान दोषसे भर जाता है (चित्र २०, २४, २५)। सिरका शीर्ष भाग चौड़ा होने लगता है। ललाटपर चर्बीकी गद्दी-सी दिखाई देती है। चेहरेपर भी असर पड़ सकता है। लेकिन उस दशा में दोष शीर्ष भागसे नीचे उतरनेकी स्थितिमें होगा।

पीठवाला (पृष्ठ) संचय हमेशा बवासीरके मस्से लिये रहता है। प्राय: पुट्ठे भी दोषसे प्रभावित होते हैं, इसलिए अक्सर चालमें भी डगमगाहट आ जाती है। पीठवाले संचयके रोगियोंके उग्र रोग भयंकर रूपके होते हैं और प्राय: घातक सिद्ध होते हैं। ऐसी दशा

उपस्थित होनेपर रोगीको बचानेके लिए मेरी विधिसे लगातार ठंडे पानीके स्नान (कटि एवं मेहन स्नान) देने चाहिए और खूब पसीना लाना चाहिए। तेज ज्वरयुक्त रोग प्रायः बच्चोंको ही होते हैं। पृष्ठ-संचय-ग्रस्त प्रौढ़ोंको तो यह नीरोगकारी उभार अपेक्षाकृत कठिनाईसे ही आते हैं। फिर भी उन्हे पृष्ठ-संचयके कुपरिणाम तो भोगने पड़ते ही हैं। एक वार सिरमें संचय होनेपर स्नायु-संबंधी रोग, जैसे स्मरण शक्तिका अभाव, शून्य-मनस्कता, उत्साहहीनता आदि, आ घेरते हैं। मस्तिष्क बिल्कुल विचलित रहता है। पृष्ठ-संचयमें सदा मस्तिष्क-विकार होनेकी आशंका रहती है। मुखाकृति-विज्ञानकी असली कीमतका विशेष रूपसे यहीं पता चलता है कि उसके द्वारा हम बहुत आरंभमें ही भविष्यके खतरेसे आगाह हो जाते हैं।

पृष्ठ-संचयसे पीड़ित व्यक्ति प्रथम दशाओंमें मानसिक रूपसे सक्रिय होते हैं, पर हमेशा उनमें कुछ-न-कुछ बेचैनी तो रहती ही है। पृष्ठ-संचय-ग्रस्त बच्चे अकाल-प्रौढ़ लगते हैं, लेकिन आगे चलकर उनसे की गई आशाएं पूर्ण नहीं होतीं। वे असावधान और अन्यमनस्क होते हैं। लेकिन डाक्टरोंको तो उनमें कोई खराबी मालूम नहीं होती। प्रौढ़ोंसे, जो स्नायु-दौर्बल्यके कारण पूरी तकलीफ उठाते हैं, कह दिया जाता है कि आपको कोई रोग नहीं है, सिर्फ वहम हो गया है—खयाली बीमारी है। ऐसे लोग अपने फूले हुए गोल-मटोल शरीर और त्वचा की सुर्खीके कारण स्वास्थ्य के नमूने समझे जाते हैं।

पृष्ठ-संचयके कारण समयसे पहलेही काम-वासना पैदा हो जाती है। ऐसे युवक और युवतियां हस्तमैथुनकी ओर प्रवृत्त होते हैं, जिनका परिणाम नपुंसकता और बांझपन होता है। पृष्ठ-

संचय-ग्रस्त दंपती निरपवाद रूपसे संतान पैदा नहीं कर सकते। यदि स्त्री-पुरुषके जोड़ेमें-से केवल एकके पृष्ठ-संचय हुआ हो तो संतान हो सकती है, लेकिन वह कमजोर और अल्पायु होगी। पृष्ठ-संचय-ग्रस्त स्त्रियोंको गर्भपातका खतरा रहता है, या अकाल-प्रसव का। यदि संतान हो गई तो मांके पास पिलानेको दूध नहीं होता।

पृष्ठ-संचय और उसके दुष्परिणाम यदि किसी जातिमें आम हो जायं तो मानना पड़ेगा कि उस जातिकी उतरती घड़ी आ गई है और उसका पतन सन्निकट है। यह एक मजेदार और ग़ौर-तलब बात है कि पुराने पर्शियनों (चित्र २४) और रोमनोंके (चित्र २५) शरीरके ऊपरी भागकी जो मूर्तियां मिलती हैं, उनमें पृष्ठ-संचय स्पष्ट दिखाई देता है। इस प्रकार मुखाकृति-विज्ञानके द्वारा हम जानते हैं कि सभ्यता और संपत्तिमें उन्नत होनेपर भी उन जातियोंका पतन क्यों हुआ।

पृष्ठ-संचय-ग्रस्त व्यक्तियोंका बौद्धिक स्तर नीचा होता है। वे कूट राजनीति-संबंधी कार्योंके लिए कभी उपयुक्त नहीं होते। उदाहरणार्थ चित्र ६ का व्यक्ति निस्संदेह चित्र २० और २१ वालोंकी अपेक्षा मानसिक एवं बौद्धिक रूपसे अधिक उन्नत है, चाहे उसकी साधारण शिक्षा कम ही क्यों न रही हो।

पृष्ठ-संचय गरीबोंकी अपेक्षा अमीरोंमें अधिक पाया जाता है। कारण, अमीर ही भोजन की मर्यादाका अधिकतर उल्लंघन करते हैं।

पृष्ठ-संचय-ग्रस्त हर व्यक्तिका कर्तव्य है कि वह शीघ्र अपने नीरोग होनेका उपाय करे; क्योंकि उम्र बढ़नेके साथ-साथ रोग-का अच्छा होना भी उतना ही कठिन होता जायगा। पृष्ठ-संचय-

की सबसे जड़ी बुराई यह है कि पीड़ित व्यक्ति शनैः-शनैः नीरोग होनेकी शक्ति खो देता है। दोष-द्रव्यके नरम और सचल रहते उसका निकालना अपेक्षाकृत सहज होता है; पर द्रव्यके कड़ा हो जानेपर वह स्थायी-सा वन जाता है। तब उसे दूर करनेमें बड़े धीरज और कष्टका सामना करना पड़ता है। फिर भी कभी-कभी तो निराशा ही हाथ लगती है।

४. मिश्रित संचय

(चित्र ८, १८, १९ और २६)

पूर्वोक्त कथनानुसार अकेला एक तरहका संचय बहुत कम ही पाया जाता है। प्राय. दो या सब तरहके संचय एक साथ पाये जाते हैं। वहुत बार तो सामने या बगलका संचय एक साथ (चित्र ८, १०, १८ और १९) और उसी प्रकार बगलका तथा पृष्ठ का संचय एक साथ (चित्र २२ और २५) और कभी-कभी अग्र और पृष्ठ-संचय भी एक साथ ही पाया जाता है।

स्वभावतः उन व्यक्तियोंकी अवस्था अत्यधिक भयंकर होती है, जिनमें शरीरके विभिन्न भागोंका संचय (चित्र २६, ३९, ४०) होता है। ऐसे व्यक्ति स्नायविक रोगोंसे ग्रस्त, अशांत, असंतुष्ट और सनकी होते हैं। उन्हें कोई उग्र रोग होनेपर, और इसकी उनके लिए विशेष संभावना रहती है, बरावर खतरा वना रहता है। शरीरके फूले और मांससे लदे होनेके कारण उन्हें खूब स्वस्थ माना जाता है, लेकिन उनकी अकस्मात् मृत्यु होनेपर लोग आश्चर्य करते हैं और कहते हैं कि ऐसा मोटा-ताजा आदमी कैसे एकाएक मर गया?

लेकिन ऐसे लोगोंका शरीर जबतक फूला रहता है (चित्र २४)
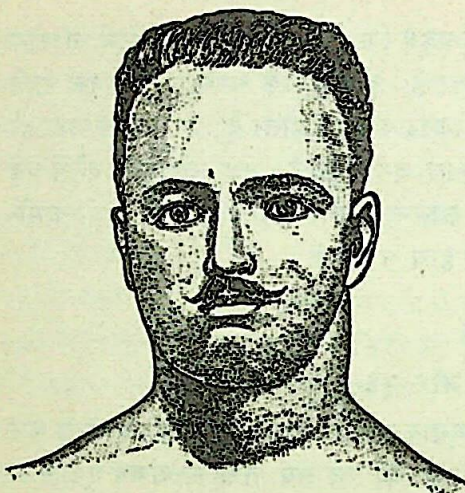
सिर—अधिक बड़ा, एक ओरको झुका हुआ, मस्तक—ज्यादा ऊंचा, चर्बीसे भरा, आंखें—अशांत, चेहरा—सीमा-रेखा गायब (साफ नहीं दिखाई देती), गर्दन—अधिक बड़ी, खासकर बाईं ओर।

चित्र २६—व्यापक संचय, खासकर बाईं ओर

इसमें हमें विशेषकर सिरकी चौरस शक्ल दिखाई देती है और गर्दनकी आश्चर्यजनक मोटाई।

(चित्र २६ की आकृतिके व्यक्तिकी पीठका भाग)
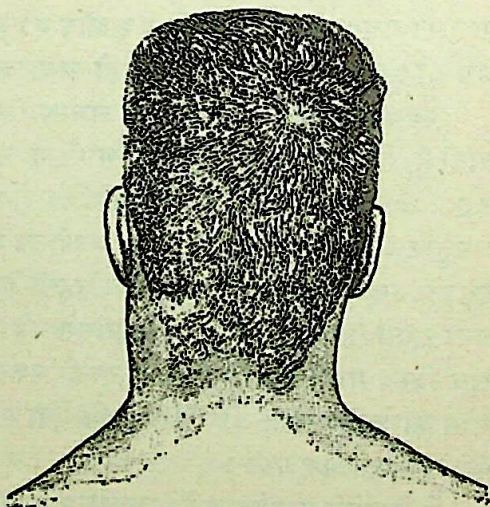
चित्र २७—व्यापक संचय

सिर—बहुत बड़ा, मस्तक—चर्बीसे भरा, आंखें—साधारण, नाक—अधिक पतली, मुंह—कुछ खुला, चेहरा—सीमा-रेखा एकदम जाती रही है, गर्दन—चारों ओरसे मोटी, गुद्दीकी सीमा-रेखा गायब ।
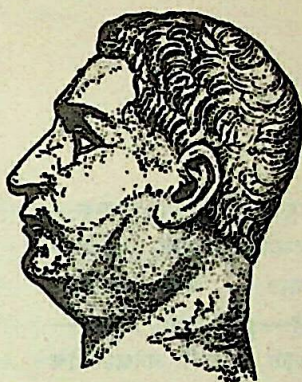
चित्र २८—व्यापक संचय
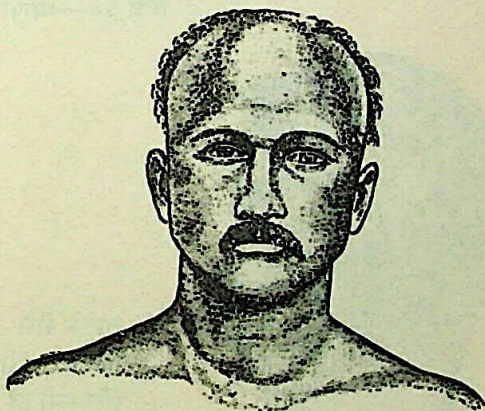
चित्र २९—व्यापक संचय

सिर—अधिक बड़ा, मस्तक—चमकीला, आंखें—दबी, नाक—कुछ अधिक चौड़ी, मुंह—कुछ खुला, चेहरा—चौरस, सीमा-रेखा लुप्त (अदृश्य); गर्दन—अधिक मोटी, सख्त, गुद्दीकी सीमा-रेखा लुप्त (अदृश्य) ।

सिर—अधिक बड़ा, मस्तक—लगभग सामान्य, आंखें—अशांत, नाक—सामान्य, मुंह—कुछ खुला, चेहरा—विकृत, ऊपरकी अपेक्षा नीचे अधिक चौड़ा, सीमा-रेखा लुप्त (अदृश्य) गर्दन—अधिक मोटी।
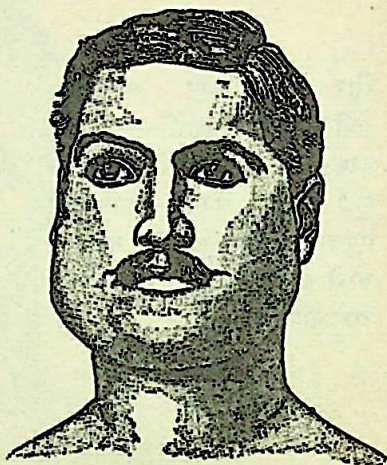
चित्र ३०—व्यापक संचय
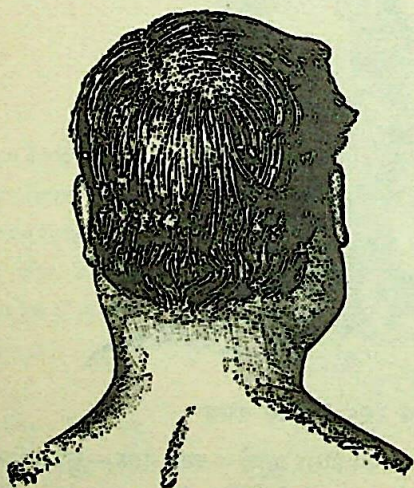
कानके पीछे भारी सूजन दिखाई देती है, सख्त और बढ़ी हुई गर्दन।

चित्र ३१—व्यापक संचय
(चित्र ३० की पीठका हिस्सा)
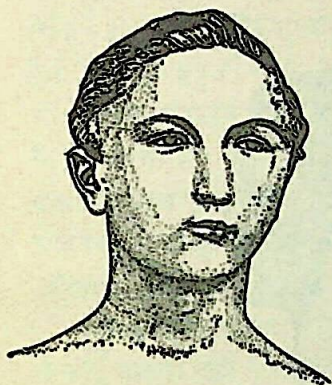
सिर—असामान्य, ऊपर अधिक चौड़ा, मस्तक—दबा, आंखें—दबी, नाक—सामान्य, मुंह—सामान्य, चेहरा—पीला, गर्दन—सख्त, कुछ अधिक मोटी।

चित्र ३२—व्यापक संचय
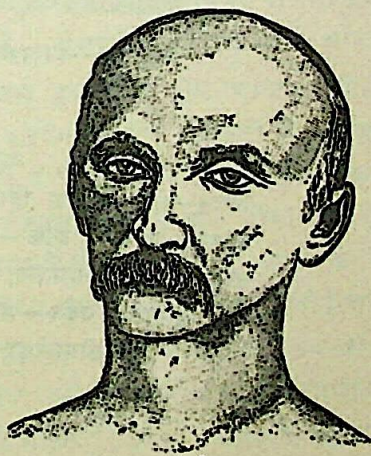
सिर—बहुत बड़ा, ऊपर बहुत चौड़ा, नीचे बहुत तंग, मस्तक—दबा, आंखें—दबीं, नाक—सामान्य, मुंह—सामान्य, चेहरा—पीला, विकृत, गर्दन—बहुत मोटी, सख्त।

चित्र ३३—व्यापक संचय
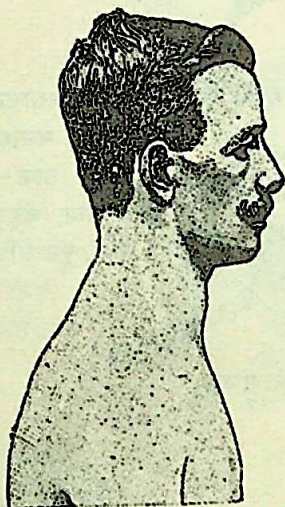
चित्र ३४—व्यापक संचय

आकृति—असामान्य, अत्यधिक ढालू कंधे, सिर—छोटा, पिछला हिस्सा अधिक ऊंचा, मस्तक—सामान्य, आंखें—सामान्य, नाक—सामान्य, मुंह—सामान्य, चेहरा—सीमा-रेखा सामान्य, गर्दन—अधिक मोटी, गुद्दी-पर सीमा-रेखा लुप्त ।

होता है, तबतक तो आराम होनेकी उम्मीद की जा सकती है। लेकिन इनके कृश और शुष्क होनेपर तो ईश्वर ही मालिक होता है। ऐसोंको बहुत मदद नहीं पहुंचाई जा सकती। किसी भी रोगीका आराम होना, उसकी उम्र और जीवनी-शक्तिपर निर्भर करता है। बहुतसे लोगोंमें इस अवस्थामें भी दोषको बाहर निकाल फेंकनेकी काफी शक्ति होती है। पर जीवनी-शक्तिकी कमी होनेपर तो लाभ होना कठिन ही होता है।

भीतरी अवयवोंके रोग

मुखाकृति-विज्ञानका साधारणतः डाक्टरीकी रोग-नामावली से कोई वास्ता नहीं है। हर रोगका नाम देनेसे इसे क्या मतलब है? यह सामान्यतः इस निदानमें समर्थ है कि कौन-सा भीतरी अवयव अधिक आक्रांत हुआ है। अब हम लक्षणों तथा उसके द्वारा किये गए अनुमानके आधारपर विचार करेंगे। हमारे पाठकों को यह तो पता ही है कि किसी प्रकारका संचयहोनेपर पाचनेन्द्रियां हमेशा प्रभावित होती हैं। बीमारी—विकार—का आरंभ यहींसे होता है, और जिस हदतक वे दोष-व्याप्त होती हैं, उतना ही उनकी काम करनेकी शक्ति छीजती है। संभव है, पीड़ित व्यक्तिको इसकी कोई प्रतीति न हो, क्योंकि विकार की जीर्ण दशा आंतरिक अवयवोंमें बहुत कम पीड़ा देती है। पाचनेन्द्रियों को अपना काम बे-मालूम तरह से, यानी अपनी स्थितिका अनुभव कराये बिना, पूरा करना चाहिए। ऐसी स्थिति तो उन्हीं लोगोंकी होती है, जो अपना अधिकांश समय खाली हवामें बिताते हैं। बहुसंख्यक व्यक्ति तो पेट या आंतोंमें साधारण पीड़ाकी शिकायत करते ही मिलते हैं। इंसे वे अपना बड़ा सौभाग्य मानते हैं कि उनके इन भागोंमें कोई बड़ी पीड़ा नहीं होती।

लेकिन पूर्ण पाचन-क्षमता दोष-संचय-ग्रस्त मनुष्यमें कभी नहीं मिलती। स्वभावत: यह उस दशामें तो बहुत ही खराब रहती है, जहां दूषित द्रव्य शुष्क हो गया है। इसके परिणाम-स्वरूप कब्ज अथवा अतिसार भी हो सकता है। ये दोनों दशाएं आंतरिक तापका परिणाम हैं। आंतोंकी झिल्लियोंके शुष्क हो जानेसे—नमी चली जानेके कारण—कब्ज हो जाता है। तब मल निकल नहीं पाता, गांठें पड़ जाती हैं। अतिसार आंतोंमें अन्दर-के मलको बाहर फेंकनेकी काफी शक्ति रह जानेपर ही होता है। उस दशामें मल पूरी तरह पचे बिना ही निकल जाता है। दोनों ही दशाओंमें खुराक पूरी तरह पचती नहीं है और शरीरको उचित पोषण न मिलनेके साथ-साथ निरंतर दोष-संचय भी होता रहता है। परिणाम होता है रक्त-हीनता और दिन-प्रति-दिन शरीरका क्षय। पोषक खुराक दिये जानेके बावजूद कमजोरी और कृशता बढ़ती जाती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि खुराककी अपेक्षा पाचन-क्षमताका कहीं अधिक महत्त्व है। अत: पहला कर्तव्य पाचनकी अव्यवस्थापर ध्यान देना है। संचय कैसा है, किधरका है, इसकी परवा नहीं। बाईं ओरके संचयमें यह समझा जाना चाहिए कि पाचनेन्द्रियोंके ये वे हिस्से हैं, जो बाईं ओर पड़ते हैं और जो अधिक प्रभावित हुए हैं। वहांपर रुक-रुककर या लगातार कष्टकर अनुभूति और दर्दका अनुभव होगा। संचय दाहिनी ओर होनेपर कष्ट विशेषकर उधर मालूम होगा। पृष्ठ-संचयमें आंतोंके पिछले हिस्सेमें कष्ट अनुभव होता है। जैसाकि पहले कहा गया है, साधारणत: उस व्यक्तिको बवासीरका कष्ट होता है। अग्र-संचयमें दूसरे प्रकारके संचयोंकी अपेक्षा पाचन-यंत्र कम प्रभावित होते हैं। कष्ट तो उतना ही

होता है, लेकिन पाचनमें गड़बड़ी उतनी नहीं होती है। उस दशामें किसी आरोग्यकारक उभार या मेरे स्नानों या उचित रहन-सहन द्वारा आराम होना आसान होता है।

पाचनेन्द्रियोंमें एक अवयव यकृत है, जो दाहिनी ओर है और जो इस ओरके संचयमें लगभग हमेशा ही प्रभावित होता है। उस दशामें शरीरका रंग पीला पड़ जाता है, क्योंकि यकृत (लीवर) रक्तसे पित्तको अलग करनेमें असमर्थ हो जाता है। दाहिनी ओरका संचय और उसीके साथ त्वचाका पीला रंग सामान्यत: यकृतकी खराबीके चिह्न हैं। लीवरकी खराबी और सामान्यत: दाहिनी ओरके संचयका एक चिह्न है खूब पसीना आना। ऐसे संचयवाले सब व्यक्तियोंको तत्काल पसीना आता है, जिससे उन्हें बहुत लाभ होता है। प्राय: उन्हें पैर पसीजनेका कष्ट रहता है। भले ही यह दु:खदायी लगता हो, पर इन लोगोंके लिए यह तबतक बहुत ही लाभदायक होता है, जबतक कि उसके द्वारा दोष बाहर निकलता रहता है। सारा दोष निकल चुकनेपर तो पैरोंका पसीजना अपने-आप बंद हो जाता है। उस दशामें इसका बंद होना बुरा नहीं समझा जाना चाहिए। लेकिन यदि यह कृत्रिम रूपसे दवाओं द्वारा रोका जाय तो परिणाम संकटजनक हो सकता है, क्योंकि उस स्थितिमें पसीनेसे निकलनेवाला दोष अंदर इकट्ठा हो जाता है और संभव है वह किसी मर्म स्थान-में एकत्र हो जाय। इसी प्रकार मूत्रपिंड (गुर्दे) भी पाचनेन्द्रियोंसे संबंध रखते हैं, और शरीरमें किसी भी प्रकारका दोष-संचय होनेपर इनके रुग्ण होनेकी संभावना रहती है। मूत्रको देखकर इनकी दशा तुरत जानी जा सकती है। इनकी अवस्था पृष्ठ और वाम पार्श्वके संचयमें नाजुक हो जाती है, क्योंकि उस दशामें

पसीना कम आता है। तब आंखोंके नीचे की चमड़ी सिकुड़कर थैली-सी बन जाती है, जो गुर्देकी बीमारीका निश्चित चिह्न है।

पाचनेन्द्रियमें बहुत अधिक दोष-संचय होनेपर जननेन्द्रिय (खासकर स्त्रियों की) प्रभावित होती है, पर शनैः-शनैः और उसी दशामें, जबकि संचय अत्यधिक होता है। जान पड़ता है कि कुदरतकी मंशा है कि सृष्टिक्रम शीघ्र प्रभावित न हो। स्त्रियोंमें जननेन्द्रिय-संबंधी रोग दो प्रकारके हो सकते हैं। एक तो आंतोमें अत्यधिक दोष-संचय हो जानेसे, जिससे गर्भाशय दबाव पाकर हट जाता है, और जिसे गर्भाशयका सरकना कहा जाता है; दूसरे जननेन्द्रियोंके स्वयं दोषसे पूरित हो जानेसे। यह दूसरी स्थिति केवल पृष्ठ-संचयमें पाई जाती है। स्त्रियोंमें इस प्रकारका संचय वंध्यत्वका, गर्भ-कालमें कष्टका और प्रसवमें कठिनाईका कारण होता है। संचयकी मात्राके अनुसार दूध भी कम उतरता है या बिल्कुल बंद हो सकता है। पूर्व-कथनानुसार पृष्ठ-संचय संतति होने में बाधक होता है।

यदि यह संचय शरीरके ऊपरी या नीचेके हिस्सेमें बढ़ता है और पसीने द्वारा निकल नहीं जाता तो वात-रोगकी आशंका रहती है। विशेषतः यह बाईं दिशाके संचयमें होता है, क्योंकि उस दशामें पसीना पूरा नहीं आता। इस तरह बाईं दिशाके संचयमें गठियाका खटका रहता है। लेकिन यह संचय अधिक मात्रामें होनेपर ही होता है, क्योंकि सारा शरीर छोर तक दोष-से भर जाने तक ये कष्टकर लक्षण प्रकट नहीं होते। वात-पीड़ा प्रायः यकायक ताप गिर जानेसे होती है। ठंड आकस्मिक संकोचन पैदा करती है और उस दशामें दोष पीछेकी ओर वापस धकेला जाता है और जोड़ोंपर आकर जमा हो जाता है,

इससे दर्द बढ़ता है। ऐसा वातका दर्द जोड़ोंके आगेकी ओर होता है, पीछेकी ओर कभी नहीं होता। यदि स्थानीय भाप-स्नानसे दर्दके स्थानके छिद्र खोल दिये जायं तो जमा हुआ दोष पिघल जायगा और कुछ दोष निकल जानेसे दर्द भी जाता रहेगा।

दोष निकल न पानेकी दशामें वह सख्त हो जाता है और यही गठिया हो जाता है। यह अच्छे न हुए वात-रोगका परिणाम हैं। वात-रोगको शुष्क गर्मी देकर हटानेकी कोशिशके परिणामस्वरूप भी यह हो जाता है। वात-रोगकी अपेक्षा गठियाका आराम होना अधिक कठिन होता है। वातकी भांति ही गठिया भी बाईं दिशाके संचयका परिणाम है। बाईं दिशा-का संचय देखकर हम सहज में वात और गठिया की भविष्यवाणी कर सकते हैं। पृष्ठसंचय हुआ और गुर्दे भी रोगी हुए तो हालत और भी खराब होती है, क्योंकि उस हालत में गुर्दे अपना काम यथावत् नहीं कर पाते। इसके कारण दोषकी बढ़ी हुई मात्रा, जो बाहर निकल जानी चाहिए, अंदर रह जाती है। बाईं दिशा-के संचयमें हृदय भी आक्रांत होता है, विशेषकर जहां सामनेका संचय भी शामिल रहता है।

फेफड़ेके रोगोंकी गिनती अति भयंकर रोगोंमें की जाती है। रोगोंद्वारा फेफड़ोंके आक्रांत न होनेका अनुभव करने और डाक्टरके फुफ्फुस-संबधी रोगका निदान करनेतक उसका शरीर बूरी तरह रोगाक्रांत हो चुका होता है।

मुखाकृति-विज्ञानकी सहायतासे तो रोगका निदान बहुत पहले हो सकता है और समय पर यदि उचित उपचार किया जाय तो यह रोग भी, रोगों के अन्य रूपोंकी भांति सहजमें आराम किया जा सकता है। पूर्व-कथनानुसार फेफड़े कभी अकेले आक्रांत

नहीं होते। सारा शरीर रोगसे लद जानेपर ही बादको फेफड़ों-पर असर पहुंचता है। अस्वच्छ हवा भी, जैसाकि पहले कहा जा चुका है, फेफड़ोंको आक्रांत नहीं कर सकती, जबतक कि शरीरके भीतरी भागमें दोष जमा न हो जाय। संभवतः, फुप्फुसों (फेफड़ों) संबंधी रोग सामान्यतः अन्य रोगोंके, खासकर ज्वरके, दवा द्वारा दबाये जानेके परिणामस्वरूप पैदा होते हैं। डाक्टरोंके बुखारकी प्रकृति न पहचाननें और उपचारके ये गलत तरीके चलते रहने तक कुफल-स्वरूप फेफड़े-संबंधी बीमारियां फैलती ही रहेंगी। दोष ऊपरसे आकर फेफड़ोंमें जमा होता है। सिर और कंधोंपर विशेष संचय हो जाने पर वहांसे वह नीचे उतर आता है। कभी-कभी सिर मुक्त रहता है और संचय सीधे कंधों और गलेसे आरंभ होता है (चित्र ३८)। इस प्रकार दोष पहले नीचेसे ऊपरकी ओर जाता है, उसके बाद फिर भीतरी अवयवोंमें ऊपरसे नीचे की ओर। जब दोष नीचे आता है तो फेफड़ोंके शीर्ष भाग प्रायः पहले आक्रांत होते हैं। अक्सर यह देखा जाता है कि जिन्हें क्षय होता है, वे पूर्ण युवा और तगड़े होते हैं। क्षय होनेसे पहले कोई यह देख सकता था कि उस समय भी दबाव ऊपरकी ओर है और पेड़ू में पिंड बन रहे हैं। चेहरा सुर्ख चमकदार है और शनैः शनैः चौरस शक्ल (चित्र ३७, ३८ और ३९) ले रहा है। आगे चलकर इन व्यक्तियों-का मुंहको बंद रखना मुश्किल हो जाता है, लेकिन धीरे-धीरे ओठोंके अलग-अलग रहनेका अंतर बढ़ता जाता है। इस स्थितिमें नाक भीतरसे सूख जाती है और नाक और फुप्फुस जीर्ण श्लेष्मासे भर जाते हैं। नाकका भीतरी भाग काला भी पड़ने लगता है, जिससे रोगकी बढ़ी हुई दशाका अन्दाज होता है। शरीर तगड़ा रहने तक तो नाक फूलती जाती है, फिर यह पतली पड़ती जाती

सिर—सामान्य, गर्दन—सामने की ओर सामान्य, पीछे कुछअधिक मोटी, पीठ—पर एक दोषकी भरी हुई थैली, इसी वजहसे सिरमें दोष-संचय हो पाया है।
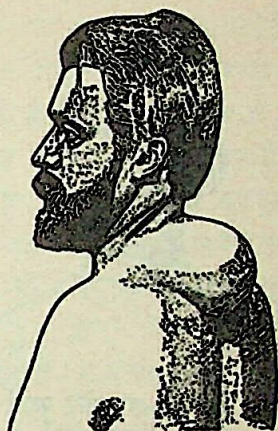
चित्र ३५—पृष्ठ-संचय
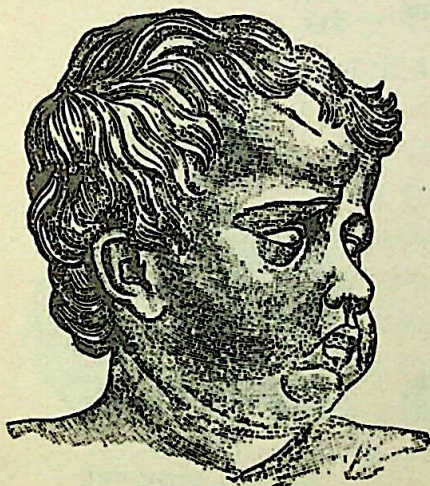
चित्र ३६—अग्र और पार्श्व-संचय
(गण्डमालसे पीड़ित लड़का)

सिर—बहुत बड़ा, मस्तक—चर्बीसे भरा, आंखें—दबी, नाक—बहुत मोटी, मुंह—खुला, चेहरा—लगभग चौरस, सीमा-रेखा लुप्त, गर्दन—बहुत छोटी और मोटी।

चित्र ३७—अग्र और पार्श्व-संचय
(गण्डमाली लड़का)

सिर—बहुत बड़ा, मस्तक—चर्बीसे भरा, आंखें—सामान्य, नाक—अधिक मोटी, मुंह—खुला, चेहरा—लगभग चौरस, सीमा-रेखा लुप्त, गर्दन—बहुत छोटी और मोटी।

सिर—लगभग सामान्य, नीचे अधिक चौड़ा, मस्तक—सामान्य, आंखें—सामान्य, नाक—फूली हुई, जीर्ण शोथ, मुह—खुला, चेहरा—चौरस, सीमा-रेखा लुप्त, गर्दन—पिंडपूरित, सख्त।

चित्र ३८—अग्र और पार्श्व-संचय (क्षयोन्मुख)

चित्र ३९—व्यापक संचय (क्षयोन्मुख)

सिर—सामान्य, मस्तक—सामान्य, आंखें—कुछ दबी हुई, मंद, नाक—कुछ अधिक मोटी, मुंह—खुला, चेहरा—चौरस, फूला हुआ, सीमा-रेखा लुप्त (अदृश्य)।

चित्र ४०—व्यापक संचय (क्षयोन्मुख)

सिर—सामान्य, मस्तक—चर्बीसे भरा, आंखें—मंद, नाक—अधिक मोटी, मुंह—खुला, चेहरा—सीमा-रेखा लुप्त, गर्दन—सख्त, अधिक लंबी, छाती—खोखली।

है, खासकर नाकके बांसेके पास, तब दशा नाजुक होने लगती है। बहुतोंमें सिर कम आक्रांत होता है, क्योंकि दोष गर्दनमें जमा हो जाता है। इससे गर्दन लंबी हो जाती है और कंधे दब जाते हैं, इसलिए मैं फिर कहता हूं कि पहलेसे जिनका झुकाव फेफड़ोंके रोगकी ओर होता है, वे प्रायः फूले हुए होते हैं। दबाव ऊपरकी ओर बढ़ा हुआ होता है। यही समय होता है जबकि बीमारी को, विशेषतः बच्चोंकी, उसकी शुरुआतमें ही रोका जाय। बड़े सिरों-वाले बच्चोंके सिर (चित्र ३७, ३८, ५०, ५२) यानी सारे कंठ-मालाके रोगी बच्चोंमें क्षयके बीज रहते हैं। ये संचय-ग्रस्त माता-पितासे रोगके बीज लिये हुए पैदा होते हैं या गलत खुराकसे अथवा जन्मके प्रारंभिक मासों अथवा वर्षोंमें ली हुई दवाओंसे आगे रोगी हो जाते हैं।

सामान्यतः ऐसा शरीर अपने अंदरसे दोष निकालनेकी कोशिश करता रहता है और इसीके परिणामस्वरूप प्रायः सर्दी-खांसी होती है। यदि यह फिर-फिरकर होती रहे या बहुत दिनों तक टिके तो हमेशा क्षयकी संभावना समझनी चाहिए। प्रौढ़ोंमें भी शरीर इसी तरह दोषको बाहर फेंकनेकी कोशिश करता है। अग्र-संचयमें बहुत दिनों तक शरीर ऐसा कर पाता है, इसलिए अग्र-संचय-ग्रस्त रोगी क्षय-ग्रस्त होनेपर भी बुढ़ापा आने तक जी सकते हैं; लेकिन जहां संचय पार्श्ववर्ती होता है, विशेषतः पृष्ठकी ओर, वहां जीवनीशक्ति शीघ्रतापूर्वक बहुत घट जाती है और इस प्रकारके उभार नहीं आ पाते। शरीर दोषको निकालनेके लिए फोड़े-घाव वगैराकी मदद लेता है। कभी-कभी पीठ और छातीपर तथाकथित कारबंकल (अढीठ फोड़े) भी हो जाते हैं। ठीक तरहसे उपचार करनेपर तो इनसे शरीरको राहत ही

मिलती है, क्योंकि शरीरसे काफी दोष मवादके रूपमें निकल जाता है। लेकिन अल्प जीवनी-शक्तिवाले लोगोंमें दोष सख्त होकर गांठोंकी शक्ल ले लेता है और यही फेफड़ेकी क्षय-ग्रंथियां कहलाती हैं। ये भी एक प्रकारके व्रण ही हैं जो पक नहीं पाते; किंतु ये वहीं उठते हैं, जहां जीवनीशक्ति कमजोर होती है।

ऐसी गांठोंमें कोई दर्द नहीं होता। इससे साधारणतः रोगी-को अपनी भयंकर दशाका अंदाज नहीं हो पाता। इनमें शरीरकी शक्ति तो क्षय होती जान पड़ती है, लेकिन दद न होनेके कारण कोई यह नहीं सोच पाता कि वह मौतकी ओर कितनी तेजीसे बढ़ रहा है।

अन्य सूजनें (गांठें) भी इसी तरह पैदा होती हैं, नाम उनका बवासीर, ट्यूमर, कैंसर आदि चाहे जो रख दिया जाय। प्लेगकी बाघी और फोड़े भी इसी तरह पैदा होते हैं। इनमें भी उसी प्रकार शरीर स्वयं अपनी सफाई करनेकी कोशिश करता है, पर जीवनी-शक्तिकी अल्पता उसे सफल नहीं होने देती और उसीके परिणामस्वरूप गांठ होती है।

भयंकर रोग कुष्ठका आरंभ भी सिरोंपर गांठें (गिल्टियां) बननेके रूपमें ही होता है। ये गिल्टियां पहले वहीं बनती हैं, जहां पसीना निकलना बंद हो जाता है।

गिल्टियोंका होना, चाहे वे किसी प्रकारकी हों, हमेशा इस बातका लक्षण है कि शरीरकी दशा भीतरसे बिल्कुल अव्यवस्थित है और जीवनीशक्ति घट गई है, जिससे शरीर थोड़ा या पूरा फोड़े और घाव पैदा करनेमें असमर्थ हो गया है।

सामान्यतः भयंकर पृष्ठ-संचयमें उपर्युक्त चिह्न पाये जाते हैं। सामनेके मामूली संचयमें जीवनी-शक्ति उतनी बुरी तरह प्रभावित

नहीं होती।

जीवन-शक्तिको बढ़ा पानेपर गिल्टियां फोड़ोंका रूप ले लेंगी और स्वास्थ्य सुधर जायगा।

एक व्यक्ति वर्षोंसे आंखका कष्ट भोगते-भोगते लगभग अंधा हो चला था। उसके सिरमें बहुत-सी गांठें थीं, जो साल-ब-साल बढ़ रही थीं। मेरे उपचारसे उसकी जीवनी-शक्ति इतनी बढ़ी कि दोनों गालोंपर बड़े-बड़े फोड़े बने और उनमेंसे काफी मवाद निकला। गांठें गायब होगईं, साथ-साथ उसकी आंखोंकी दशा सुधर चली और कुछ ही दिनोंमें वह भलीभांति देखने लगा।

एक २० वर्षीय युवकके हाथों और चेहरेपर काफी तादादमें मस्से हो गए थे। गर्मीके मौसममें उसे खुली हवामें रहनेका मौका मिल जानेसे उसकी जीवनी-शक्ति जागी और बिना किसी उपचारके उसे उभार आया। उसके एक बाजूपर बड़ा-सा फोड़ा बना और वह कई हफ्तों तक बहता रहा। उसको स्वयं और उसके दोस्तों को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि इसी बीच उसके हाथों और चेहरेके मस्से जाते रहे। इस मामलेमें शरीरने स्वयं अपनी शक्तिसे काम लिया।

फेफड़ोंके क्षयकी भांति ही अनेक प्रकारका कुष्ठ गरम मुल्कोंमें बहुत साधारण है। यह रोग भी अति दोष-संचयका ही परिणाम है; बहुत करके यह दूसरी बीमारियों—खासकर ज्वर तथा गरमी—का फल है जो दवाओं द्वारा दबाई गई हैं। उपदंशको दबानेका जो साधारण डाक्टरी तरीका है, यानी पारेका इस्तेमाल, वहां चंगा होनेकी संभावना कम रह जाती है। वह शरीरकी नीरोग होनेकी निजी शक्तिको बहुत कमजोर कर देता है।

अन्य रोगोंकी भांति कुष्ठ भी ज्वरीय रोग है, क्योंकि इसमें
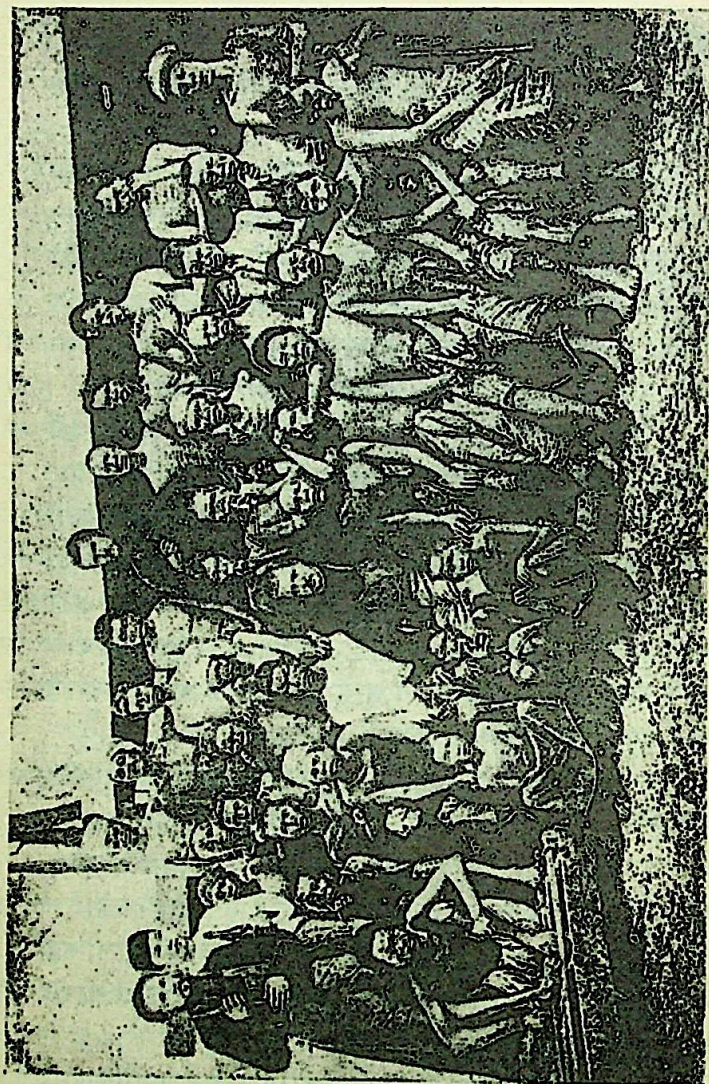
चित्र ४१—कुष्ठी-समूह

शरीर गांठोंको घुलाने और दोष-संचयको निकालनेकी कोशिश करता रहता है। यदि यह घाव या फोड़े पैदा करनेमें सक्षम हो जाता है तो गांठें जाती रहती हैं और त्वचा, जो पहले खुश्क और चमकीली थी, अब फिर सामान्यतः नरम और उसके सूक्ष्म छिद्र मुक्त हो जाते हैं। शरीरमें घाव पैदा करनेकी यथेष्ट जीवनी-शक्ति न होनेपर गांठें आकारमें बढ़ती जाती हैं या अंतमें सूख जाती हैं और उसके कारण हड्डीमें घाव होकर हड्डी और अंग सड़ने लगता है।

चित्र ४१ असली फोटोसे लिये हुए कुष्ठियोंके एक समूहका चित्र है। इसमेंसे कुछके सब अंग साबित हैं, कितनोंके हाथ-पांव सड़ गये हैं और कितने ही केवल अस्थि-पंजरमात्र हैं। ऐसे रोगियोंका आराम होना प्रायः असंभव है। यह तो तभी तक संभव होता है जबतक शरीर सड़ना नहीं शुरू हुआ है, अथवा दोष खुश्क नहीं हुआ है। डाक्टर इस रोगको असाध्य मानते हैं। रोगकी प्रकृतिसे बिल्कुल अनजान होनेके कारण ही वे ऐसा मानते हैं। कुष्ठमें वे कोई अस्थायी लाभ भी नहीं दिखा सकते, क्योंकि इसमें समूचा शरीर दोषाक्रांत होता है—कोई ऐसा भाग नहीं बचता कि जहां दोषको ढकेला जा सके। चिकित्सा-विज्ञान कहलानेवाली पद्धति अपनी सारी ताकतका उपयोग करती है, कुष्ठियोंको अपने कुटुम्बसे छिनवाकर दूसरे द्वीपको भेज देती है। लेकिन इस प्रकार कुछको हटा देनेपर भी कुष्ट नहीं हटता। डाक्टर इसकी रोकथामके बारे में कोई उपाय नहीं कर पाते। कुष्ठका कारण कुछ कीटाणुओंको मान लिया गया है, लेकिन शरीरके दोष-संचयका उन्हें कोई पता नहीं।

मुखाकृति-विज्ञानका साधारण विद्यार्थी भी आनेवाले खतरे-

को तत्काल भांप सकता है। शरीरके उस भयंकर दोष-संचयको परखना कोई कठिन बात नहीं है, जो आगे रोगकी शक्ल लेनेवाला है। इस नवीन निदान-पद्धतिका जानकार रोगीको समय रहते सावधान कर दे सकता है, जिससे वह आगे आनेवाली तकलीफोंसे या लापरवाहीसे बच सके।

नवीन चिकित्सा-विधिसे, उचित समयपर, लगनसे समुचित उपचार करके बहुतसे कुष्ठ-रोगियोंको बचाया जा सकता है। बहुतेरं पादरी बड़ी तत्परतासे कुष्ठियोंपर मेरी विधियोंका प्रयोग कर रहे हैं और कुछने तो अत्यधिक सफलता प्राप्त की है। इस रोगका कारण भी वही है जो अन्य रोगोंका। अतः जिन तरीकोंसे दूसरे रोग आराम होते हैं उन्हीं तरीकोंसे इसे भी आराम होना चाहिए, लेकिन रोगीके शरीरमें जीवनी-शक्ति पूरी-पूरी होना शर्त है।

: ३ :

व्यावहारिक निदान

अब मैं बताऊंगा कि व्यावहारिक रूपमें मुखाकृति-विज्ञानसे किस प्रकार रोगियोंकी, खासकर अपनी और कुटुम्बियोंकी परीक्षा की जा सकती है।

मनुष्यमें पूर्णता अभ्याससे ही आती है। शीघ्र निदान-दक्ष होनेके लिए सूक्ष्म और पैनी दृष्टिका होना आवश्यक है। इस पद्धतिके ज्ञातासे मैं कहूंगा कि बिना दूसरे के इच्छा जताये स्वयं-प्रेरणासे उसे निदान करनेमें नहीं लगना चाहिए। यह एक प्रकारका बड़ा सामाजिक अपराध होगा। इससे मुखाकृति-विज्ञान-की शोभा नहीं होगी।

अपने चिकित्सालयमें निदान किये गए कुछ मामले मैं पाठकों-के सामने रखना चाहता हूं। दोष-संचयका पूर्णरूप तो चित्रों द्वारा दिखाना संभव नहीं है, जैसे त्वचाका वर्ण और तनाव सिर्फ एक ओरका ही दिखाया जा सकता है। व्यक्तियोंको देखकर किये गए अनुमान तो सही ही थे।

१. चित्र ११ की लड़की। पहले हम उसका आकार, प्रकार और त्वचाका वर्ण (रंग) देखते हैं। उसका ढांचा सही नहीं है। सिर आगे को झुका हुआ है। त्वचा पीतवर्ण है। आंखोंकी अंधमुदी दशा, दोष-संचयके भारके कारण है। लड़की वास्तवमें तो कमबेश अंधी ही है। रोगकी गंभीरता तुरन्त ध्यानमें आ जाती है। उसके सिरमें दोष-संचय अधिक है। संचय किस तरफका है? सिरकी ओर देखते ही हम समझ जाते हैं कि यह सामनेका

भयंकर संचय है। चेहरेकी पृथक्करण रेखा कानकी साधारण रेखासे बहुत पीछे है। कुछ पृष्ठ-संचय भी है। गर्दनपरकी पृथक्-करण रेखा प्रायः अपनी जगहपर है। सिरको सीधा पकड़ रखनेपर यह और स्पष्ट दिखाई देता है। रोगीको गर्दन ऊपर उठाकर देखनेपर तो एक सूजन साफ दिखाई देती है, साथ-साथ गर्दनका खिचाव भी। गर्दनको दायें-बायें घुमानेसे पार्श्व-संचय भी प्रकट होता है और तनाव भी। आंखोंका रोग सामनेके संचयके कारण हुआ है। हम निश्चित रूपसे इस परिणामपर पहुंचते हैं कि शरीरके सामनेके सारे हिस्सेमें दोष-संचय है और पेड़ू मुख्य रूपसे प्रभावित है। पार्श्व-संचय इतना स्पष्ट नहीं है कि उन हिस्सोंमें विशेष बेचैनी हो। आंखोंपर जो असर पड़ा है वह सिरमें संचय बढ़नेके कारण है। इस निदानसे हम रोगीको ढाढ़स बंधा सकते हैं कि वह अपेक्षाकृत आसानीसे चंगा हो सकता है, इसलिए कि उसका रोग सामनेके संचयका है।

इस मामलेमें हमें आंखोंका स्थानीय उपचार, जैसा कि किया जाता है, शुरू करनेकी जरूरत नहीं है। इसके बदले पेड़ूसे संचय निकालनेका उपाय करना चाहिए। इसके निकलनेके साथ-साथ आंखोंको भी फायदा होगा। इस लड़कीके बाजूपर जो एक घाव है, उसका क्या कारण है? यह कृत्रिम घाव टीकेका परिणाम है। बच्चेका रक्त ट्यूबरक्यूलिनके इन्जेक्शनों द्वारा विषाक्त कर दिया गया है। यह बात हमारी जांचसे पकड़में नहीं आ सकती थी। यह तो इसकी माताने हमें बतलाया। पर शरीरमें यह विष पहुंचाये जानेके कारण इसके आरोग्य होनेमें देर लग सकती है।

इन सबके बावजूद कुछ ही हफ्तोंमें इस लड़कीकी

आंखोंमें रोशनी लौट आई। सिरका संचय इस बीच बहुत-कुछ घट गया था।

२. चित्र ३८ के लड़केको देखकर तो हम उसकी बीमारीको कम ही समझ पायंगे। बहुत लोग तो वास्तवमें उसे स्वस्थ ही मानेंगे। उसका ढांचा और वर्ण रोगी-जैसा नहीं लगता—यद्यपि उसके चेहरेपर युवावस्थाकी ताजगीका अभाव है, तथापि हम स्वस्थ शरीरको सामने रखकर तुलना करें तो हमें पता चलेगा कि उसके सिरका, सामनेका, हिस्सा कुछ बड़ा है।

हम ज़रा सूक्ष्मतासे देखें। इसमें संचय नहीं है। चेहरेकी पृथक्करण रेखा स्वाभाविक है। इसे देखकर कोई भी कह सकता है कि सामनेका संचय नहीं है। फिर भी गौरसे देखनेपर हम पाते हैं कि गरदनकी दाहिनी ओर मांसपिंड है। रोगीके सिरको एक तरफ घुमानेपर यह स्पष्ट प्रकट होता है। यदि वह इसे पीछेकी ओर झुकाता है तो हम पाते हैं कि सामने काफी खिचाव पड़ता है और शोथ भी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यहां संचय बाईं ओरका है और सामनेका भी। उसमें दोषका ऊपरी दबाव है और भीतर उच्च ताप है। दोष कुछ-कुछ माथे तक पहुंच गया है। कुछ हिस्सा गर्दनमें जमा हो गया है और ट्यूमर (गांठ) की शक्ल ले ली है। हमें निश्चय है कि ये पिंड कमोबेश पेड़ू में भी मिलेंगे—विशेषत: बाईं ओर।

यह लड़का जरूर हृदयकी धड़कनसे पीड़ित होना चाहिए। इसे पसीने भी ठीक न आते होंगे। फलस्वरूप उसकी पाचनक्रिया भी मंद होगी, क्योंकि पाचनका ठीक रहना पसीनोंके ठीक निकलते रहनेपर निर्भर करता है। यदि यह दोष बाईं ओर ऊपर—सिरकी तरफ बढ़ता गया तो परिणामस्वरूप इसे अधकपारी, कर्णशूल

होगा, सिरके बाल उड़ेंगे। कुछ सालोंमें सिरमें गांठें बन जायंगी और बायें भागका संचय होनेके परिणामस्वरूप इसे गठिया होगी। इसके सीनेको भी खतरा हो सकता है, क्योंकि दोष गर्दनके चारों ओर एकत्र हुआ है। वह दोष सिरकी ओर जायगा या सीनेकी ओर, यह कोई नहीं कह सकता। जैसे यदि सूखी खांसी हो तो कहा जा सकेगा कि फेफड़े आक्रांत होंगे।

अब हमारा काम है कि दोषको, भीतरी तापको, घटाकर स्नानों और उचित खुराक द्वारा पेड़ू की ओर वापस लौटायें। रोगी युवक है और पृष्ठ-संचय नहीं है, इसलिए कहा जा सकता है कि उसके आराम होनेकी पक्की संभावना है। धीरज तो रखना ही पड़ेगा, क्योंकि गांठें बन गई हैं और पार्श्व-संचय तो प्रकट ही है। सिर्फ सामनेका संचय होता तो वह आराम होनेमें इससे आधा समय लगता—आधी कठिनाई भी नहीं होती।

३. चित्र ७ का व्यक्ति देखनेमें ठीक लगता है। इसका वर्ण, जहांतक ऊपरी हिस्सेका संबंध है, एक हदतक सामान्य है; चेहरेके निचले हिस्सेका वर्ण धूमिल और वह हिस्सा भारी है। दोनों बगलोंमें देखनेसे भी मालूम होता है कि यह मामला सामने-के संचयका है। चेहरेकी पृथक्करण रेखा बिल्कुल गायब है। गर्दनको ऊपर ले जानेसे गर्दनपर शोथ प्रकट होती है, जो ठुड्डी तक बढ़ी हुई है। सिरको दाहिने, बायें घुमानेसे कोई पार्श्विक खिचाव नहीं जान पड़ता, जिससे सिद्ध होता है कि पार्श्व-संचय तो नहीं है, पृष्ठ-संचय ही जान पड़ता है।

मौसम ठंडा होनेपर इस रोगीकी गर्दनमें तकलीफ होगी, विशेषत: दांतों में। उसके कुछ दांत उम्रसे पहले गिर गये हैं। दोष-संचय खासकर चेहरेके निचले हिस्सेमें है, लेकिन ऊपरी

हिस्सेमें भी कुछ फैल गया है, जिससे बाल झड़ते हैं। यह भी खतरा है कि आगे-पीछे आंखें भी आक्रांत हो सकती हैं।

सिर्फ सामनेका संचय होनेके कारण रोगीको कटि-स्नान और मेहनस्नान द्वारा शीघ्र लाभ पहुंचानेका विश्वास दिलाया जा सकता है।

४. चित्र नं० १२ की स्त्री। सिर बाईं ओरको लचा हुआ है। देखते ही अन्दाज हो जाता है कि संचय दाहिनी बगलका है। चेहरेका दाहिना हिस्सा बायेंकी अपेक्षा लम्बा-चौड़ा है। चेहरेके दाहिनी ओरकी त्वचा चमकीली है, बायें ओरकी स्वाभाविक।

सिरको घुमानेपर संचय केवल दाहिनी ओरका लगता है और थोड़ा-सा सामनेका। इस स्त्रीके पेड़ू के दाहिने हिस्सेमें काफी दोष-संचय हुआ है, जो दाहिनी बगलमें दबाव डाल रहा है। दाहिनी तरफके जितने अवयव हैं, उन सबपर इसी प्रकार प्रभाव पड़ेगा और इससे दंतपीड़ा, कर्ण-पीड़ा, आंखोंमें शोथ और सम्पूर्ण उग्र दशाओंमें अधकपारीकी भी सम्भावना है। उदाहरणके लिए गलेके शोथमें, पहले दाहिना भाग प्रभावित होगा। पसीना सामान्य रूपमें आते रहनेपर भी रोगीको कभी-कभी जुकामकी तकलीफ होगी।

५. निपुण अभ्यासीकी आंखें देख सकती हैं कि चित्र १७ के शरीरका ढांचा असाधारण है। उसका बायां कंधा दाहिनेसे ऊंचा है। सिर शरीरके बीचोंबीच न होकर दाहिनी तरफ ज्यादा झुका हुआ है। शरीरका बायां सारा अर्धभाग, वास्तवमें चौड़ा और तगड़ा है, दाहिनेकी अपेक्षा। कपड़े पहने रहनेपर भी इसका पता चलता है। त्वचाका वर्ण पीला है। रोगीकी निराशा-

पूर्ण बाहरी आकृतिसे हम मालूम कर सकते हैं कि उसका शरीर दोषसे भरा हुआ है। गौरसे देखनेपर पता चलता है कि बाईं ओर भयंकर संचय है। सामनेका संचय बहुत कम है, पर पीठ काफी प्रभावित है। दाईं ओर कोई संचय नहीं है।

इस प्रकारका प्रकट संचय बतलाता है कि पेड़ूका संचय बहुत बढ़ गया है। वहां काफी फुलावट होगी, विशेषत: बाईं ओर।

यह रोगी निस्सन्देह हृद्‌रोगसे पीड़ित है। गठियाकी ओर उसका झुकाव है और संचयाधिक्यके कारण उसे दाहिनी ओरके लकवेका डर है।

इतने अधिक संचयकी स्थितिमें पूरा आराम होना तो कभी-कभी ही सम्भव होता है, फिर भी कुछ सुधारकी उम्मीद की जा सकती है।

६. चित्र २० से प्रकट होता है कि आदमी मजबूत है। खुराक इसे बढ़िया मिलती रही है, फिर भी उसका आकार-प्रकार सोलह आने सही नहीं है। उसका सिर कुछ आगेको झुका हुआ है। बिना किसी कठिनाईके देखा जा सकता है कि उसके बदनमें फुलावट है और उसने अतिरिक्त पोषण पाया है। चमचमाहटके साथ चेहरे पर उत्तेजनाके चिह्न हैं। माथेपर चर्बीकी गद्दी है।

यह उदाहरण पृष्ठ-संचयका है। गौरसे देखनेपर मालूम होता है कि गर्दनका बिचला हिस्सा दोषसे बिल्कुल भरा हुआ है। इसके कारण गर्दनको पीछेकी ओर झुकाना असम्भव है। गर्दन घुमानेकी कोशिश करनेपर उसे सारे शरीरको ही घुमाना पड़ता है। पार्श्व-संचय दोनों ओर है। गर्दनके इधर-उधर देखनेसे दोनों ओर शोथ लगती है। इसमें सामनेका संचय नहीं है। यह रोगी अत्यन्त नाड़ी-दौर्बल्यग्रस्त होना चाहिए। यह अधिक समय तक

किसी मानसिक काममें नहीं लगा रह सकता। शारीरिक श्रममें भी देर तक लगे रहना इसके लिए सम्भव नहीं है। पूरा ध्यान देकर वह किसी व्याख्यानको सुन-समझ नहीं सकता, किसी सिनेमा और थियेटरमें भी बहुत देरतक बैठे रहना उसके लिए सम्भव नहीं है। मतलब, वह किसी भी कमरे या हालमें बहुत देर तक बैठा नहीं रह सकता। उसका दिमाग खराब हो जानेका बहुत अंदेशा है।

उसे खूनी मस्से भी होंगे, जिनके मार्फत दोष पीठकी ओर जाता है।

मेरी विधिसे इलाज करनेपर कई सालोंमें इसके पूर्ण नीरोग होनेकी आशा की जा सकती है। दोषमें—द्रव्यमें अभी सख्ती नहीं आई है, इसलिए कुछ सुधार तो शीघ्र हो सकता है। मस्तिष्कसे दोष जितनी जल्दी निकल जायगा, उतनी ही जल्दी उसे लाभ होने लग सकता है। पूर्ण नीरोगिताके लिए तो पृष्ठ और पार्श्व-का सारा संचय जाना चाहिए।

७. चित्र २ का व्यक्ति मोटा-सोटा है। वह कदम धीरे-धीरे बढ़ाता है। उसका आकार-प्रकार—बहिराकृति खराब न होनेपर भी त्वचाका वर्ण बतलाता है कि रोग अन्दर तक पैठ गया है। बहुत सुर्ख होनेके कारण त्वचा चमकीली लगती है। उसका प्रत्यक्ष मोटापा बतलाता है कि रोगीमें भारी संचय है। मेदसे माथा गद्दीदार हो गया है। मेद आंखोंपर इस प्रकार छा गया है कि वे छोटी दिखाई देती हैं और उनके खोलनेमें कठिनाई होती है। हमें तुरन्त पता चल जाता है कि यहां पृष्ठ-संचय है। दबाव माथेसे नीचेकी ओर है, यानी पीछे। मोटे, लटके हुए गाल, बतला रहे हैं कि सिर दोषसे भर गया है। उसकी शून्य (बन्द)

दृष्टि देखकर आशंका होती है कि उससे दिमागी खराबी शुरू हो गई है। गर्दन लगभग सिर-जितनी मोटी हो गई है और एक तरहसे वह गायब-सी होती गई है। चारों ओरसे सूजी हुई है और सख्त है। इसलिए गर्दन इधर-से-उधर झुकाई नहीं जा सकती, सिर्फ ऊंची की जा सकती है। सीमा-रेखा बिल्कुल गायब है, ग्रीवासंधिके पिछले भागमें—गर्दन और जबड़ेके दोनों स्थानोंपर।

यह सारे शरीरमें बढ़े हुए सामान्य संचयका उदाहरण है। फिर भी बहुतेरे तो इस व्यक्तिको मजबूत और तन्दुरुस्त समझेंगे। कारण, स्वाभाविक आकृतिके बारेमें लोगोंके मनमें कोई कल्पना ही नहीं रह गई है।

प्रत्यक्ष है कि इस रोगीने बहुत दिनोंतक उत्तेजना और नाड़ी-दौर्बल्यसे कष्ट भोगा है। युवावस्थासे ही वह अपच और खासकर कब्जका शिकार रहा है। उसे बवासीर भी रहा है। कभी यह चैनसे नहीं सोता। संभवतः वर्षों तक वह उन्निद्र रोगसे पीड़ित रहा है। मानसिक रूपसे वह अपंग है, उसे कहीं शांति नहीं मिलती। दोष-संचयका दबाव ऊपरकी ओर है और भीतर उच्च-ताप है। बाईं ओरका संचय होनेके कारण पसीनेकी कमी भी है। इससे दोषका दबाव ऊपरकी ओर बढ़ता है। उम्र कामके लायक होनेपर भी वह किसी कामको अच्छी तरह पूरा नहीं कर सकता। बहुत दिनोंसे वह नपुंसक है।

ऐसा व्यक्ति किसी भी रोगका शिकार हो सकता है। यदि समय रहते उसका उपचार न हो तो जरूर उसका दिमाग खराब हो जायगा। उसके लिए वास्तविक नीरोगिता तो कुछ मुश्किल ही है, खासकर इसलिए कि रोगीमें सब तरहकी शक्तिका

अभाव है। यदि उसकी दशामें थोड़ा सुधार हो जाय तो यह एक बड़ी सफलता ही समझनी चाहिए।

८. चित्र ४२, उम्र तीस साल, सिर आगेकी ओर झुका हुआ, सीना खोखला है। वर्ण पीला, मंद, निर्जीव। चेहरा शीर्ण, गालोंकी हड्डियाँ निकली हुईं।

ये लक्षण बतलाते हैं कि रोगीकी पाचन-शक्ति बहुत खराब है। उसका मेदा भोजनको खींचता नहीं और शरीर क्षय हो रहा है।

गर्दन असाधारण रूपसे लंबी है। उसमें गांठें हैं। (चित्र ४३ उसी व्यक्तिके सम्मुख भागका है) इसमें सामनेका संचय है। यद्यपि चेहरेकी विभाग-रेखा फिर साधारण हो गई है, गाल और गर्दनका संचय शुष्क हो जानेके कारण, तथापि सिरको उठवाने-पर तनाव पाया जाता है और गांठें साफ हो जाती हैं। तब इसे सामनेका संचय होनेमें कोई शक नहीं रह जाता। गर्दन दोनों बगलोंमें दोष-पूरित है, बहुत फूली हुई है और खिचाव जाहिर करनेवाली है। यह देखनेकी बात है कि संचय ऊपरकी ओर अधिक अग्रसर नहीं हुआ है, इससे सिर मुक्त और बाल स्वस्थ और घने हैं। पृष्ठ-संचय नहीं है। दोष खास करके गर्दनमें जमा हुआ है और गर्दन तथा बगलोंको पूरा-पूरा छेंक लिया है। दोष द्रव्य नीचेकी ओर ढकेला गया है, फेफड़ोंको पार करते हुए, जिससे छाती खाली हो गई है और कंधे झुक गये हैं।

पृष्ठ-संचय न होनेके कारण रोगीकी मानसिक दशा सामान्य है। रोगोंकी दशा जीर्ण हो जानेके कारण उसे वह सह्य हो गई है, कोई कष्ट नहीं होता है। ऐसे रोगी अन्तिम् क्षणतक आरोग्य होनेकी आशा रखते हैं। इस रोगीको निराश तो नहीं करना
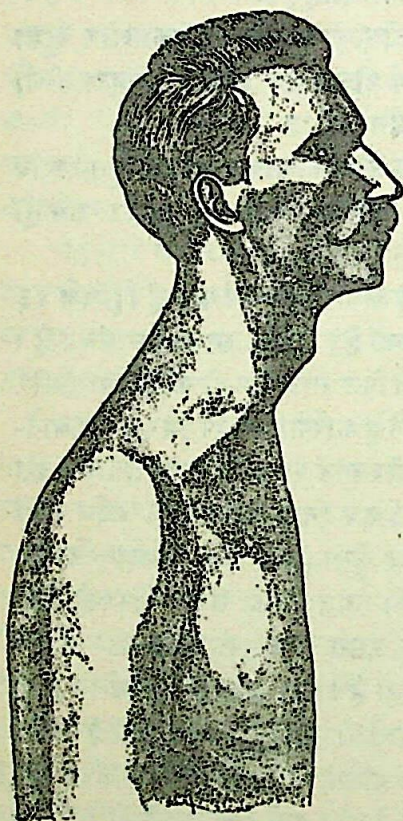
शरीर क्षीण, सिर आगे झुका हुआ, सिर—सामान्य, मस्तक—सामान्य, आंखें—मंद, नाक—आकृति सामान्य, भीतर शोथ, मुंह—खुला, चेहरा—अधिक दुवला, खाकी रंग, सीमा-रेखा सामान्य। गर्दन—वहुत लंवी, सख्त, पिंडोंवाली गुद्दीकी सीमा-रेखा सामान्य, छाती—खोखली।

चित्र ४२—अग्र और पार्श्व-संचय (क्षयोन्मुख)
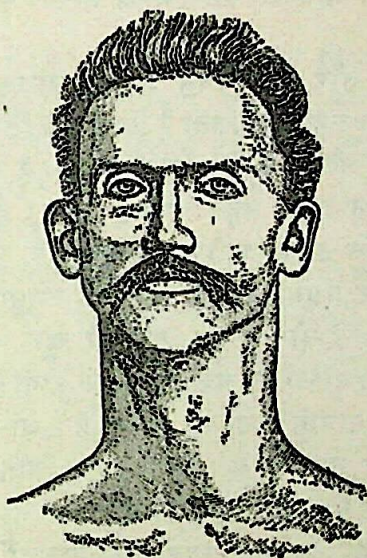
चित्र ४३—अग्र और पार्श्व-संचय

चित्र ४२ वाली आकृतिका सामनेका चित्र। चेहरेकी चौरसाई और असामान्य लम्बी गर्दन द्रष्टव्य है।

चाहिए, पर उसके पूर्ण आरोग्यका भरोसा तो थोड़ा ही है। हां, उसकी दशामें सुधार की आशा जरूर की जा सकती है।

दुर्भाग्यवश रोगीकी दशा इसके पहले नहीं जानी गई। साल-दो-साल पहले तो उसके अच्छे होनेकी पूर्ण आशा की जा सकती थी।

९. ५१ और ५२ चित्रमें प्रदर्शित बालक। इसके सामने आते ही तुरंत कहा जा सकता है कि इसका सिर अस्वाभाविक रूपसे बड़ा है और आगेकी ओर झुका हुआ है और चेहरा सुर्ख है। गर्दन अनुपाततः बहुत कोताह (तंग) है। पूरी परीक्षा बतलाती है कि उसके शरीरभरमें संचय है, जो चारों ओरसे आंखोंकी ओर अग्रसर हुआ है। चित्रके अनुसार पेड़ू भी बहुत बड़ा है। बहुतेरे लोग तो इस बच्चेको खूब विकसित मानेंगे, लेकिन हमारी दृष्टिमें तो वह हर तरहसे रोगी है। आंखोंपरका असर तो आसानीसे देखा जा सकता है। वास्तवमें मेरे पास लानेके समय तक लड़का करीब-करीब अंधा हो गया था। चित्रमें तो वह एक महीने इलाजके बाद दिखाया गया है। उसके पेड़ू का हिस्सा आरंभमें बहुत आगे निकला हुआ था और आंखोंकी ओर दबाव पूरी तरह प्रकट था।

: ४ :

संचयका निवारण

संचयको हटाना—शरीरमेंसे दोषको निकालना, रोगकी चिकित्साका यही एकमात्र सच्चा, उपयुक्त उपचार है। दोषको शरीरके इस हिस्सेसे उस हिस्सेमें केवल ठेल देना या उसे जमा रहने देकर सूखने देना, यह कोई चिकित्सा न होकर सिर्फ लक्षणोंको दबा देना है।

सारे-के-सारे एलोपैथ डाक्टर भी तो यही करते हैं। दूसरी पद्धतिवाले तो कमोबेश—बहुत बार अनजानेमें ही—वास्तवमें रोगके कारणोंको दूर करनेकी कोशिश करते हैं। उनकी भी सफलतामें निश्चतता तो नहीं ही होती है।

बिना दवा और चीर-फाड़के, रोगोंको आराम करनेका अत्यन्त प्रभावशाली तरीका मैंने अपनी 'रोगोंकी नई चिकित्सा' नामक पुस्तकमें बतलाया है। पाठक उसे देख सकते हैं।

यहां मैं कहना चाहता हूं कि रोगीके आराम होनेका बड़ा सबूत शरीरसे दोष-संचय दूर होना है। दोष दूर न हुआ तो वह आराम कैसे माना जा सकेगा? या कहें कि वह आराम तो तभी कहलायेगा या होगा जबकि शरीरसे दोष दूर हो जाय। दोनों एक ही चीज हैं। अवश्य, आरोग्यकी अनुभूति तो दोषके पूरी तरहसे निकल जानेके पहले ही होने लगेगी, किन्तु यह होती तभी है ज़ब दोष कम होने लगता है। मुखाकृति-विज्ञानकी मददसे हम निश्चय कर सकते हैं कि रोगीको पूर्ण आरोग्य प्राप्त हुआ है अथवा केवल आंशिक सुधार हुआ है।

चित्र ४४ और ४५ में की स्त्री सामनेके और पार्श्वके संचयसे ग्रस्त है। उसने अपनी गर्दनके ट्यूमर (गांठ) के लिए दस बरस तक हर तरहके इलाज कराये, पर कोई लाभ न हुआ। अंतमें उसनें मेरा उपचार आजमाने का फैसला किया और ढाई वर्षके इलाजके बाद उसनें रोगसे छुटकारा पाया। चित्र ४६ रोगीके आराम हो जानेके बादका है। केवल वह गांठ ही नहीं गई, रोगके दूसरे सारे लक्षण भी जाते रहे। चेहरेकी गमगीनी दूर हो गई, गाल भर गये, मुंह बन्द रहने लगा, जिसे रोगिणी पहले हमेशा खुला रखती थो। गर्दन स्वाभाविक गोल और चिकनी हो गई। त्वचाका वर्ण जो पहले मुरझाया हुआ था, अब ताजा गुलाबी हो गया। जबतक उसने पूर्ण आरोग्य नहीं प्राप्त कर लिया, उसका पाचन बराबर विगड़ा रहा। अब सब ठीक हो गया, कोई खराबी बाकी न रही। भारस्वरूप जीवन आनन्दप्रद हो गया। उसके चेहरे पर खासी सुन्दरता आ गई।

इस प्रकार केवल वे ही लक्षण नहीं ठीक हुए, जिनके लिए उपचार किया गया था, शरीरकी गंदगीके दूसरे लक्षण भी मिट गये। शरीरसे सारी गंदग़ी (दोष) खारिज हुए बिना यह संभव नहीं था।

चित्र ४७-४८ में भी एक रोगीमें अद्भुत परिवर्तन हुआ दिखाई देता है। उक्त रोगीने मेरी उपचार-विधिको अपनाया था। उसका एक पत्र मैं नीचे छाप रहा हूं।

चित्र ४७ में पाठक देखेंगे कि रोगी समूचे शरीरके दोष-संचयसे पीड़ित है। उसे स्नायु-दौर्बल्य सता रहा था। उसे भय लगता था कि किसी दिन भी वह किसी उग्र रोगका शिकार हो सकता है।
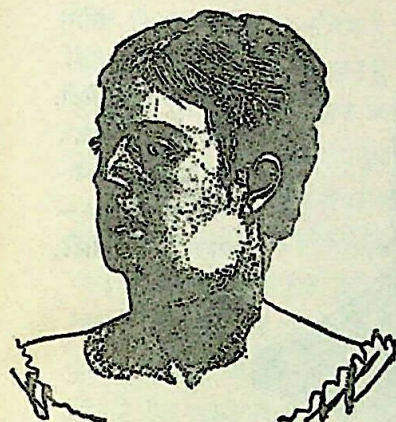
चित्र ४४
देखें—चित्र ४५

चित्र ४५—अग्र और पार्श्व-संच
(वही व्यक्ति, जो ४४ में है)
सिर—सामान्य, मस्तक—सामा
मुंह—खुला, चेहरा—अधिक दुब
सीमा-रेखा मिट गई है, गर्दन—बड़े-
पिंडोंसे भरी, गुद्दीकी सीमा-रे
सामान्य।
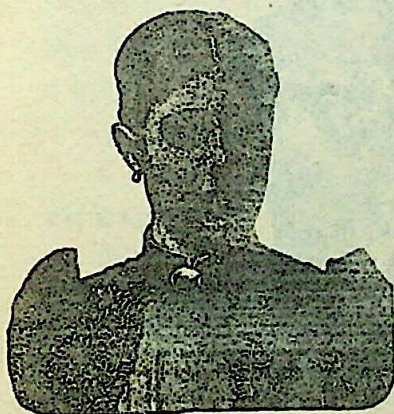
चित्र ४६—सामान्य आकृति
चित्र ४४ और ४५ वाली स्त्री, ढाई सालके उपचारके उपरांत।
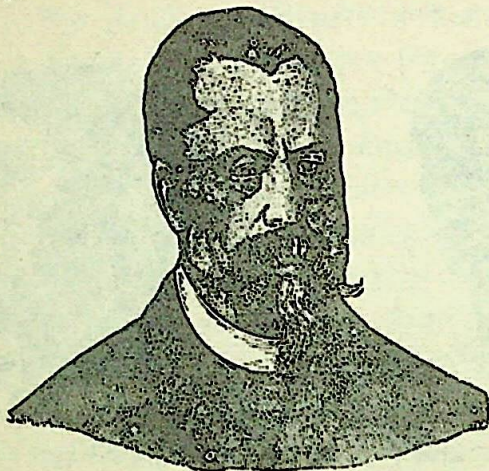
सिर—बहुत बड़ा, मस्तक— चर्बीसे भरा, आंखें—दर्बी, नाक—बहुत मोटी, मुंह— खुला, चेहरा— सीमा-रेखा लुप्त, गर्दन—बहुत मोटी, कंधे—ढालू ।

चित्र ४७—व्यापक संचय
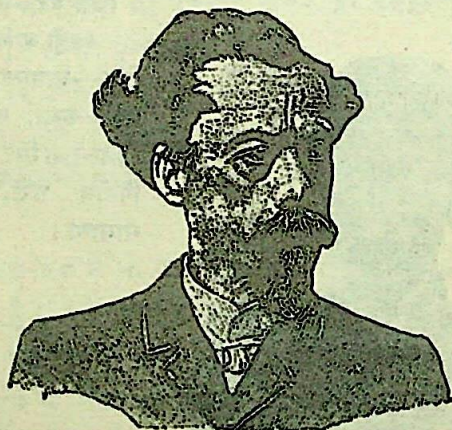
चित्र ४८

चित्र ४७ वाला व्यक्ति ढाई वर्षके उपचारके उपरांत। (उसका अपना लिखा विवरण पढ़ें) ।

चित्र ४८में दोष-संचय घटा हुआ दिखाई देता है। इस चित्रमें वह अपेक्षाकृत दुबला लगता है, लेकिन समय पाकर उतनी उम्रके बावजूद उसका शरीर भर जायगा और उसपर आवश्यक मांस आ जायगा—रुग्ण मांसके बदले नीरोग मांस आयेगा।

यहां मुझे यह कह देना चाहिए कि इस रोगीने अपने पत्रमें जिस चिकित्साकी चर्चाकी है, वह मुझसे पूछकर नहीं, बल्कि मेरी 'रोगोंकी नई चिकित्सा' पुस्तकमें पढ़कर की थी। इतनी अधिक उम्रमें जो उपचार किया गया, वह मेरी दृष्टिसे बहुत सख्त माना जायगा, लेकिन शरीरने सफलतापूर्वक उसका मुकाबला किया, यह खुशीकी बात है। उक्त सज्जन लिखते हैं :

प्रिय कूने महोदय,

मैं बहुत दिनोंसे लिखनेकी सोचते-सोचते आज आपको लिख पा रहा हू। लेकिन कलम आगे बढ़ानेके पहले दो बातें लिख देना चाहता हूं, जिनके बिना शायद आपको मेरा स्मरण न आयेगा।

१. मैं लगभग सन् १८९० की फरवरी में आपसे मिला था।

२. उस समय मेरे पूरी दाढ़ी थी, जिससे आजकी अपेक्षा मेरी शक्ल कुछ दूसरी ही लगती थी।

मैं इस पत्र के साथ आपको अपने दो चित्र भेज रहा हू। ये ज्यो-के-त्यों रहने दिये गए हैं। इनमें किसी प्रकारका परिवर्तन फोटोग्राफर द्वारा नहीं किया गया है। पहला फोटो १८८९ के सितम्बर महीनेमें लिया गया था। मैं ठीक उसी समय डा० के० के एलोपैथिक सैनिटोरियमसे चार महीनेके इलाजके बाद नीरोग बतलाकर मुक्त किया गया था, लेकिन इस फोटोको देखकर मुझे नीरोग कहनेवाला तो कोई पागल ही हो सकता है।

दूसरा फोटो ठीक साढ़े तीन साल बाद लिया गया है, आपकी पद्धति के अनुसार खुराक़ और उपचार रखनेके बाद। यदि किसीनें आपके उपचारोंका और आपके खुराकके नियमोंका पूर्ण पालन किया है तो मैं कह सकता हूं कि वह मैंने किया है और उसके परिणामसे मुझे पूरा संतोष है। चित्रमें जो महान् अंतर दिखाई देता है, उसपर कोई कठिनाईसे ही विश्वास कर पायेगा।

इन चित्रोंका आप चाहे जहां, चाहे जैसे उपयोग कर सकते हैं। मैं आपको इसका पूर्ण अधिकार देता हूं। मैं आज भी नित्य ३ घर्षण मेहन-स्नान, हर बार ३०-४० मिनट का, लेता हूं, पहला सवेरे ६ बजे। सुबह आठसे दस तक मैं घूमने निकलता हूं, यथासंभव नंगे पैर, सिर्फ कमीज और नेकर पहनकर। कभी जंगल में जाकर कसरत भी करता हूं। ९ या १० से ११ तक खुली खिड़की के सामने बैठकर पढ़ाता हूं या खुलेमें बैठकर ड्राइंग करता हूं। दोपहरको ११ से १२ के बीच घर्षण मेहनस्नान। १२ से १ भोजन, १ से २ बागमें विश्राम, २ से ४ फिर शिक्षण या बैठकर ड्राइंग। ५ या ६ से ७ तक फिर घूमना। ७ बजे घर्षण मेहन-स्नान। रातको ९ बजे सोता हूं। मंगल और बुधवारको रातको ७॥से ९॥ तक मुझे ड्राइंग सिखानी पड़ती है। इन दो दिनों मैं आध-आध घंटेका मेहनस्नान लेता हूं, क्लास लेनेके पहले और पीछे भी। जनवरी १८९० से १ अगस्त १८९२ तक ३ खुराक रोजाना। सुबहका भोजन—चोकर-सहित आटेकी रोटी, अमृतान्न और फल, विशेषत: सेव और अंगूर। शामका भोजन—तरकारियां, दलिया और फल, सुबहकी भांति ही। १ अगस्त १८९२ से खुराक तो तीन ही बार लेता हूं, लेकिन सारी खुराक बिना पकी होती है; सिर्फ आलुओंको छोड़कर, जो कुछ पकाये

जाते हैं और उनमें थोड़ा नीबूका रस डाला जाता है, सलादकी शक्लमें। रोटीके बजाय अमृतान्न लेता हूं। १ जनवरी १८९३ से १ अगस्त १८९३ तक रोजाना दो ही खुराक लीं। सुबह कुछ नहीं लिया, क्योंकि काम कम किया। दोपहरकी खुराकमें कच्ची तरकारियां नीबूका रस देकर, अमृतान्न या दांतोंके पूरा काम न दे पानेके कारण, चोकर-सहित आटेकी रोटी और फल, शामको अमृतान्न और फल। १ अगस्त १८९३ से अबतक मैं नित्य दो ही खुराक लेता हूं। सुबह अमृतान्न और फल या चोकर-सहित आटेकी रोटी और फल; वही दोपहरको, कच्ची तरकारियां अमृतान्न और फल। शामको कुछ नहीं।

इन सबका परिणाम तो चित्रोंसे देखा जा सकता है, मेरे कहनेकी जरूरत नहीं रह जाती। सिर्फ इतना कह दूं कि सिर मेरा काफी गंजा है और अब फिर वहां बाल उग आये हैं और बालोंसे सारा सिर भर गया है। इन साढ़े तीन सालोंमें मेरा शरीर इतना बदल गया है कि मुझे पांच बार नई पोशाकें बनवानी पड़ीं, टोपसे लेकर जूते तक; और सबसे आश्चर्यजनक लगनेवाली बात तो है-इस ५५ सालकी उम्रमें मेरे एक नई दाढ़का निकलना। यद्यपि यह ज्यादा दिन रही नहीं, तथापि बिना किसी तकलीफ के यह आ गई। लगभग एक साल बाद किसी प्रकार यह बढ़ी। आपके उपचार और खुराकके बिना यह कभी संभव नहीं था।

यहां छुट्टियोंमें मैं धूप, प्रकाश और वायुका सेवन करता हूं, जब खुला दिन होता है तब, और इससे मुझे बहुत लाभ होता है। मैं आपकी उपचार-विधिके लिए धन्यवाद देता हूं!

आपका,

एन

: ५ :

जीवनी-शक्तिकी वृद्धि

स्वास्थ्यको बनाये रखनेके लिए—आवश्यक शक्तिकी प्राप्तिके लिए—हमारे उद्देश्यकी प्राप्तिमें सहायक हर छोटी-छोटी बातपर हमारा ध्यान देना अत्यावश्यक है। उपचारके उस हर तरीकेको, जो शरीरके दोष-संचयको निकालनेका उद्देश्य रखता है, कुछ-न-कुछ जीवनी-शक्तिकी आवश्यकता होती है और मेरी नवीन चिकित्सा भी इस नियमसे बाहर नहीं है। शरीरमें कहीं गांठों (पिंडों) का पाया जाना इस बातका चिह्न है कि जीवनी-शक्ति भयंकर रूपसे घट गई है, अन्यथा तो दोष इस प्रकार एक जगह जमा (कड़ा) न होता। रोग-मुक्तिके लिए आवश्यक है कि हम हर ऐसे तरीकेसे काम लें, जो कमजोर हुई जीवनी-शक्तिको बढ़ाये और साथ ही हर ऐसी चीजसे बचें कि कि जो जीवनी-शक्ति का ह्रास करनेवाली हो।

यहां मैं जीवनी-शक्तिकी प्रकृतिके विवेचनमें नहीं उतरना चाहता। इस समय तो हमारे सामने सिर्फ यही सवाल है कि हम उसे कैसे बनाये रखें या फिरसे कैसे प्राप्त करें?

हम रोज खायी जानेवाली खुराककी सहायतासे नित्य नई जीवनी-शक्ति पैदा करते हैं। इसमें हमें उस हवाको भी जरूर शामिल करना चाहिए, जिसके द्वारा हम सांस लेते हैं।

इस प्रकार खुराक जीवनी-शक्तिको कायम रखने या बढ़ानेमें महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि हम उस प्रत्येक कारणपर ध्यान दें, जिसका इस चीजपर असर

पड़ता है।

इसके लिए मैं चार प्रश्न सामने रखकर पोषणके सवालको हल करनेकी कोशिश करूंगा—

१. हमारी खुराक किस प्रकार हजम होती है ?

२. हम क्या खायें ?

३. हम कहां खायें ?

४. हम कब खायें ?

हमारी खुराक किस प्रकार हजम होती है ?

शरीर खुराकमेंसे अपनेको वनाने और अपनी क्रियाओंको जारी रखनेके लिए आवश्यक तत्त्व (सार) ग्रहण करता है। सार खुराकसे निकलकर पाचनद्वारा शरीरमें लगता है। पाचनके भिन्न-भिन्न रूपोंपर यहां बहस करनेकी जरूरत नहीं है, हम सारी क्रियाको एक ही मानकर चलते हैं। आंतोंमें पाचनके लिए सामान रहनेपर यह क्रिया चलती ही रहती है। खुराकको मुंहमें डालकर चबाना शुरू करते ही यह क्रिया आरंभ हो जाती है। खुराकके कुछ भागके लिए तो बचे हुए सामानके पाखानेकी शक्लमें निकल जानेपर, यह क्रिया खत्म हो जाती है। पर वहां बचा हुआ और भाग फिर शिराओं, फेफड़ों और यकृत आदि भीतरी अंगों द्वारा शरीरमें लगता है—हजम होता है; और अंतमें जो बच रहता है वह त्वचा और मूत्राशय द्वारा निकाल दिया जाता है। शरीरको अपनी क्रियाएं आप सम्पन्न करनी चाहिए, इसके लिए किसी भागको बाहरी मदद पहुंचाना गलत है। शरीरकी क्रिया अपने-आपमें पूर्ण है, इसमें किसी प्रकारकी अस्तव्यतता समूची क्रियामें अनियमितताका पता देती है। अस्त-व्यस्त पाचन, दूसरे किसी प्रकारकी भी विशृंखलताकी भाँति ही सारे शरीरकी गड़बड़ी

का सबूत है।

इस प्रकार पाचन-क्रियाके द्वारा हमारा शरीर स्वास्थ्यके लिए आवश्यक सब पदार्थ ग्रहण कर लेता है। एक प्रकारसे यह प्रक्रिया सार-ग्रहण-प्रक्रिया है, जिसके द्वारा सत्त्व प्राप्त किया जाता है। फिर भी, पाचन-क्रियाकी उपमा देने लायक और कोई प्रक्रिया नहीं है। सारी उपमाएं कमोबेश अपूर्ण हैं, पाचन-क्रिया अत्यन्त सूक्ष्म प्रक्रियाओंमेंसे एक है। पाचन-यंत्रके किसी भागको उसके कार्यसे मुक्त करनेकी कोशिश करना गलत है। हम ऐसा करके सिर्फ उन्हें कमजोर कर दे सकते हैं। मानव-बुद्धि कभी इस प्रयत्नमें सफल नहीं हुई, न होनेवाली है।

यदि पाचन कमजोर हो गया है तो हमारा मुख्य काम उसे फिरसे सुधारना है। इसके लिए हमें शरीरमें उससे ज्यादा खुराक नहीं पहुंचानी चाहिए, जितनेपर वह आरामसे अपना काम कर सके। यदि हम स्वाभाविक रीतिसे पाचनको सुधार दें तो समय पाकर शरीरमें अपने-आप शक्ति आ जायगी और साथ-ही-साथ जीवनी-शक्ति भी बढ़ जायगी।

हम क्या खायें ?

मैंने अपनी 'रोगोंकी नई चिकित्सा' पुस्तकमें इस विषयकी कुछ विस्तारसे चर्चाकी है, पर खास बातोंपर यहां कुछ कहूंगा।

खुराक प्रकृतिके अनुकूल होनी चाहिए। अप्राकृतिक खुराकसे हमें बचना चाहिए। इसीलिए मैं निरामिष भोजनकी सिफारिश करता हूं। आमिष (मांसवाला भोजन) अप्राकृतिक खुराक है।

खुराकको चबानेके लिए मनुष्यको दांत मिले हैं, इससे सिद्ध होता है कि हमारी खुराकमें मुख्य भाग ठोस (Solid) भोजनका होना चाहिए। अपचवालोंको ठोस खुराकका प्रयोग करके देखना

चाहिए। प्रायः मन्दाग्निवाले तरल खुराकको ठीक हजम नहीं कर सकते और गलतीसे वे समझते यह हैं कि सूप, दूध काफी, चाय, कोको, शराब वगैरा उनके लिए फायदेमंद है। मैंने बहुतेरे मन्दिाग्निवालोंपर ठोस भोजनके सफलतापूर्वक प्रयोग किये हैं।

पका हुआ भोजन हमेशा कच्चे भोजनकी अपेक्षा देरसे पचता है। विकासकी अवस्थाको प्राप्त फल, तरकारी तथा अन्न आदिके पचनेमें बहुत आसानी होती है, पर वे ही वस्तुएं पूर्णावस्थामें—परिणतिको पहुंच जानेपर, या क्षयकी ओर जानेपर पचनेमें बहुत कठिन होती हैं। अधपके (गद्दर) फल और नई पत्तियोंकी खुराकको मन्दाग्निवाले आसानीसे और शीघ्र पचा सकते हैं। इस प्रकारको खुराक अधिक मात्रामें नहीं खायी जा सकती। शरीर बतला देता है कि कब बस करना चाहिए।

पहले-पहल तो बिना पके फलोंकी खुराकसे अतिसार होनेकी संभावना रहती है, क्योंकि यह स्वयं जल्दी पकनेके साथ-साथ दूसरे बेकार माद्देको भी बाहर निकाल देती है। यह आंतोंमें शीघ्र आगे बढ़ जायगी। यह पाचनको सुधारनेमें भी सहायक होगी। बहुत अच्छा फल तो वह समझा जायगा, जो सीधे पेड़से तोड़कर खाया जाय, गिरकर तो इसके तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। वह फल न अधिक कच्चा हो, न अधिक पका हुआ ही। स्थानीय फल बाहरी फलोंकी अपेक्षा लाभकारी होते हैं। बाहरी फल दूरसे आनेमें अपनी सुपाचकता खो देते हैं।

वास्तवमें तो प्रकृति मनुष्योंके लिए उपयुक्त खुराक वहीं पैदा करती है, जहां वह रहता है। एस्कीमो लोगोंको, उनका स्वास्थ्य सुधारनेके लिए यूरोपसे खुराक भेजनेकी कोशिशकी गई। नतीजा यह हुआ कि उस बाहरी खुराकसे शीघ्र ही उनका स्वास्थ्य

पहले की अपेक्षा अधिक गिर गया। यदि किसी क्षेत्र (धरती) में मनुष्यके योग्य खुराक नहीं पैदा होती तो उससे यही सिद्ध होता है कि वह हिस्सा आदमीके बसने लायक नहीं है। इस दृष्टिसे उत्तरी ध्रुवप्रदेश—बर्फीले प्रांत मनुष्योंके बसने लायक नहीं हैं। वहां बसनेवाले एस्कीमो कभी वास्तवमें स्वस्थ नहीं होते, न लंबी उम्र पाते हैं।

एस्कीमो लोगोंका शरीर देखनेमें तगड़ा दिखाई देनेपर भी, दोषोंसे भरा हुआ होता है। एस्कीमो लोगोंकी जीवनी-शक्ति बहुत कम होती है। बहुत शीघ्र ऐसा समय आ सकता है, जबकि यह जाति दुनियासे खतम हो जाय।

इसके कारण भी हैं। इन्हें मजबूरन अधिकतर सिर्फ मांसपर जीवन बिताना पड़ता है। यह तो है कि जब उन्हें कभी ताज़े पौधे, जो वहांकी धरतीमें पैदा होते हैं, मिल जाते हैं तो उन्हें वे बड़े शौकसे खाते हैं; लेकिन यह तभी होता है जब वहां बरफ नहीं जमी होती है। किन्तु इतनेसे उनकी अप्राकृतिक खुराकसे होनेवाली हानिकी पूर्ति नहीं हो पाती। थोड़ा-बहुत काम चल जाता है। जो एस्कीमो समुद्रके किनारे रहते हैं और अधिकतर मछलियोंपर गुजर करते हैं, उनके शरीरमें दोष कम होते हैं। उबली हुई मछली किसीभी मांस-भोजनकी अपेक्षा कम हानिकर है, खासतौरसे मोटे किये गए पशुओंके मांसकी अपेक्षा।

समशीतोष्ण प्रदेशोंके निवासी अधिक भाग्यवान् होते हैं। जहांकी वसंत ऋतु हमारी पाचनशक्तिको बढ़ानेका सुअवसर देती है। इससे ताजी तरकारियां, पत्तियां और फल खाकर हमारी जीवनी-शक्ति बढ़ती है।

प्राय: उपर्युक्त खुराकको मनुष्यके लिए बिल्कुल बेकार

माना जाता है, लेकिन इस समझकी बुनियाद में जीवनके नियमों-की अनभिज्ञता है।

मैं यहां एक चीजका विशेष रूपसे जिक्र करना चाहता हूं, जिसकी हमारे शरीरको आवश्यकता है। लोगोंको तो यह चीज बिल्कुल व्यर्थ लगेगी, पर पाचनके लिए यह मददगार है। यह पदार्थ बालू है। प्राकृतिक दशामें प्रत्येक खुराकमें कुछ-न-कुछ बालू लगी रहती है और धो डालनेपर भी यह बिल्कुल तो नहीं जाती है। कई दृष्टियोंसे बस्तुओंका धो डालना, लाभदायक होनेपर भी, हमारे शरीरका एक बहुत आवश्यक वस्तुसे वंचित रह जाना होता है।

जानवर बड़े चावसे बालू खाते हैं और न मिलनेपर वे बीमार पड़ जाते हैं। मुर्गी और बतखोंको हम बराबर देखते हैं कि जब उन्हें बालू खानेको नहीं मिलती तो उनकी बीट सूख जाती है। शुतुरमुर्ग मरुभूमिमें रहते हैं और जहां वे पाले जाते हैं, वहां अगर काफी बालू न हो तो उनके पंखोंकी सुन्दरता जाती रहती है। चाहे जितना अच्छा खाना देनेकी दशामें भी बालू न मिलनेपर उनके पंख सुन्दर नहीं रहते हैं।

आदमियोंके लिए भी कुछ बालूकी जरूरत है। इसलिए पूरा गेहूं या बिना छना हाथ-चक्कीका आटा खाना, या उससे बनी रोटी खाना, मैदा अथवा उससे बनी रोटीकी अपेक्षा कहीं अच्छा है, क्योंकि गेहूंमें कुछ-न-कुछ बालू चिपका ही रह जाता है। पशुओंको अच्छी तरह देखनेके बाद मैंने मनुष्यके मेदेपर थोड़ी मात्रामें बालूका असर देखनेके लिए कुछ तजरबे किये। परिणाम इतना संतोषजनक हुआ कि वह सुनने लायक है। पहले-पहल मैंने एकदम शुद्ध बालू (समुद्री बालू) का इस्तेमाल किया। वैसे तो

नदीकी बालू भी वही काम दे सकती है। बालू यानी समुद्री बालू, एक तरहका रोगाणुनाशक असर करती है। जो चाहें, यह तजरबा करके देख सकते हैं। यदि किसी कमरेकी हवा गंदी हो गई हो तो गरम लाल तवे पर कुछ मुट्ठी बालू डालकर देखिए, इससे कमरेकी दुर्गन्ध दूर हो जायेगी। इस प्रयोगके समय खिड़कियां सब बंद रखनी चाहिए, जिससे बालूका प्रभाव पूरा-पूरा देखा जा सके। बालू प्रकृतिका रोगाणुनाशक है। मिट्टी-मिली बालूमें उतना अधिक असर नहीं होता।

यह प्रश्न हो सकता है कि क्या बालू हमारे अन्दर वही असर भीतरके गंदे गैसोंको और साधारणतया दोषको दूर करनेमें नहीं कर सकती? इसका तो पता नहीं, लेकिन बालू उस दलदल-को तो सुखा देती है जहां भयंकर कीटाणु उत्पन्न होते हैं।

मैंने बालूके प्रभावका पूरा पता लगानेके लिए बहुत तजरबे किये हैं और सबका अच्छा नतीजा आया है। यहां बालूके प्रभावका एक उदाहरण दे रहा हूं।

एक स्त्री युवावस्थासे ही कब्जसे पीड़ित थी। उसने बिना किसी नतीजेके बहुत-सी दवाओंका प्रयोग किया। पचास सालकी उम्रमें उसकी दशा बहुत-ही कष्टकर और भयंकर हो गई। उस-पर कोई जुलाब काम नहीं करता था और कभी-कभी तो कई हफ्ते—उसके कथनानुसार तो एक बार पांच हफ्ते—उसे दस्त नहीं हुआ। मेरे पास आनेपर मैंने उसे दिनमें चार-पांच घर्षण कटि-स्नान बताये और खानेको खड़े गेहूं और खट्टे फल। यह उपचार कब्जमें बहुत कम ही असफल होता है। पर इसके लिए वह भी नाकाफी रहा। इसलिए मैंने उसको दिनमें दो-तीन बार भोजनके तुरन्त बाद एक चुटकी बालू देकर देखा। नतीजा बहुत

शीघ्र हुआ और आशाके बाहर। दूसरे दिन भी दस्त हुए। पहले तो पाखाना काला, कड़ा और गांठदार हुआ, समयसे हुआ और बिल्कुल सामान्य रूपसे। स्नान और भोजन पहलेके मुताबिक चलता रहा।

इस तरह हमने देखा कि बालूने बहुत अच्छा असर किया और यह पाचनको ठीक रखने और उसको ठीक होनेके लिए सहायता करनेमें निचिश्त प्राकृतिक तरीका है। डाक्टर तो जरूर इस बातसे इन्कार करेगा कि बालूसे कोई असर हो सकता है, क्योंकि बालू बिल्कुल घुलनशील नहीं है और इसका शायद ही कोई अंश पचता है। डाक्टरका तो खुराक और उसके पचनेके तरीकोंके सम्ब्रन्धमें हिसाब ही दूसरा है। वह तो हिसाब लगाकर कहेगा कि शरीरको अमुक-अमुक चीज अमुक परिमाण-में चाहिए। शरीर केवल सामान ही नहीं चाहता, जरूरत शरीरके अंगोंके काम करनेकी भी होती है। काम करते रहकर ही वे तन्दुरुस्त और सही-सलामत रह सकते हैं। पाचन अंगोंको स्वयं खुराकसे रस खींचना चाहिए; जिस रससे वे खून, मांस, हड्डियां, मज्जा और बाल वगैरा बना सकें और पाचक रस जैसे दूसरे अम्ल रस और मद्यसार बना सकें। प्राकृतिक खुराकमें शरीरके लिए आवश्यक सब पदार्थ मौजूद रहते हैं। शरीरमें उनसे खींच लेनेकी शक्ति रहनी आवश्यक है। शरीरमें वायु पैदा करनेको शक्ति भी रहनी चाहिए, जिसमें वह खुराकको गति दे सके और उसे नीचे सरका सके। काफी वायु पैदा न होने-पर अवरोध पैदा हो जायगा और परिणामस्वरूप सिर-दर्द होगा। यह अनियमितता उसी समय होती है, जब शरीरमें पहलेसे दोष-संचय रहता है या अप्राकृतिक खुराक इस्तेमाल की जाती है।

मैं बच्चोंकी खुराकके बारेमें भी कुछ कहना चाहूंगा। शिशुकी प्राकृतिक खुराक मांका दूध है। जिन बच्चोंको यह नहीं मिलता, उन्हें अभागा ही समझा जायगा। उनके शरीरमें दोष-संचय होगा। चित्र ४९ में जो लड़का दिखाया गया है, उसने अपनी मांका दूध पीया है। ५० और ५१ में दिखाये गए लड़कोंके चित्रसे मुकाबला कीजिये, जो कृत्रिम खुराकपर रक्खे गए थे। प्रत्येकका सिर अनावश्यक रूपसे बड़ा है और पेड़ू आगे निकला हुआ। ऐसे बच्चे हमेशा अकाल प्रौढ़—बचपनमें अधिक तेज—दिखाई देते हैं। यूरोपके लोगोंमें दोष-संचय बढ़ रहा है, इसका पता इस बातसे चलता है कि वहां बचपनमें विलअण बुद्धिवाले, होशियार लड़के ज्यादा दिखाई देने लगे हैं। मां-बाप अपने इन बच्चोंका गौरव करते हैं और लोगोंको दिखाते है। लेकिन करनी चाहिए इन बच्चोंपर दया, क्योंकि आगे चलकर इनमें वह बुद्धिकी विलक्षणता गायब हो जाती है। बचपनकी विलक्षणता—चंचलता—दोष-संचयका चिह्न है। यह चंचलता तभी होती है, जबकि दोष मस्तिष्ककी ओर बढ़ता है और उसका असंतुलित विकास होता है। किसी हिस्सेमें इस प्रकार दोष एकत्र होनेपर उसमें एक गलत क्रियाशीलता पैदा हो जाती है। मुख-सामुद्रिक शास्त्रवाले (Phrenologist) भी ऐसे अंशीय विकासकी बात कहते हैं। लेकिन उन्हें यह पता नहीं है कि यह दोषका संचय है, क्योंकि वे उसके कारणसे अनभिज्ञ होते हैं।

ऐसे लड़के देखे गए हैं, जो सात वर्षकी उम्रमें बीस वर्षकी उम्रके-से ढंग दिखाते हैं, लेकिन आगे चलकर ऐसे लड़के अपने दूसरे साथियोंसे बुद्धिमें हेठे रह जाते हैं। बचपनमें अच्छे गानेके लिए प्रशंसा पानेवाले लड़कोंके बारेमें देखा गया है कि बड़ी उम्रमें

शरीर—सामान्य रूपसे विकसित, सिर—उम्रके हिसाबसे सामान्य, इसी प्रकार दूसरे सब भाग सामान्य, विशेषतः पेड़ू की सामान्य आकृतिपर ध्यान देना चाहिए। बच्चेको माताका दूध मिला था और वह ६ महीनेमें ही चलने लगा था। चित्र लेनेके समय वह एक सालका था।

चित्र ४९—सामान्य आकृति
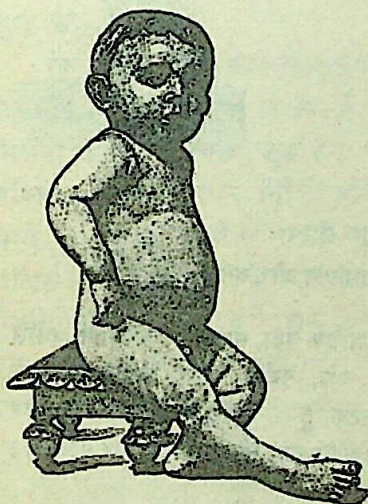
चित्र ५०—व्यापक संचय

शरीर—मोटा और भद्दा, सिर—बहुत बड़ा, मस्तक—चर्बीसे भरा, नाक—बहुत मोटी, मुंह—खुला, गर्दन—अधिक छोटी और मोटी, गर्दन पर सीमा-रेखा लुप्त, पेड़ू—आगे निकला हुआ, हाथ और पैर—बहुत फूले हुए। बच्चा डिब्बेके दूधपर पला था और २१ महीनेका हो जानेपर बिना सहारेके मुश्किलसे बैठ पाता था।

चित्र ५१
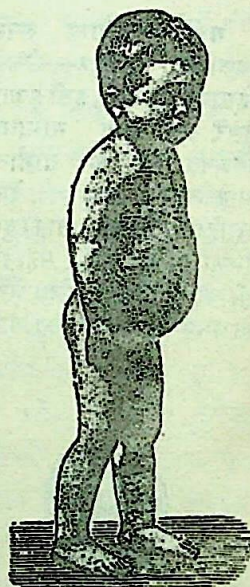
चित्र ५२

व्यापक संचय

(तीन वर्षके लड़केका सामनेका और बगलका चित्र)

शरीर—भारी, भद्दा, सिर—अधिक बड़ा, मस्तक—अत्यधिक चर्बीसे भरा, आंखें—बहुत दबीं, लगभग अंध, गर्दन—सीमा-रेखा लुप्त, सिर मुश्किलसे घुमा सकता है, पेड़ू—लटका हुआ, दोषसे भरा हुआ, हाथ और पैर—मोटे, पर सख्त, लोच-रहित। यह बच्चा भी डिब्बेके दूधपर पला था।

उनकी यह गायन-पटुता गायब हो गई और संगीतकी साधनाके लिए जिस श्रम और बुद्धिकी आवश्यकता होती है, वह उनमें नहीं रह गई। चित्र ५३ पोहलर नामक एक लड़केका है। उम्रकी दृष्टिसे वह अधिक विकसित लगता है। डाक्टरोंको इसमें कोई आस्वाभाविकता नहीं मालूम होती है, लेकिन मुखाकृति-विज्ञानकी दृष्टिसे हम कह सकते हैं कि उसके सिरमें दोष-संचय बड़ी मात्रामें है और उसका माथा कमानीदार हो गया है। उसकी आंखें कांचकी तरह चमकीली हैं। हम कह सकते हैं कि बच्चेकी पाचन-शक्ति खराब होगी। निस्सन्देह उसके सामने और पार्श्वके भागमें दोष-संचय है, यद्यपि चित्रसे इस बातका पूरा अन्दाज नहीं हो पाता। लड़केका सिर ऊपरकी तरफ बहुत चौड़ा है और उम्रको देखते हुए उसका मस्तिष्क अस्वाभाविक रूपसे विकसित हो गया है।

हम कहां खायें ?

कितनोंको ही यह प्रश्न फिजूल मालूम होगा, लेकिन बात ऐसी नहीं है। जैसाकि पहले कहा गया है, हमारे फेफड़ोंको खुराक पूरी मिलनी चाहिए। अच्छी, शुद्ध हवा जीवनके लिए और जीवनी-शक्तिको बढ़ानेके लिए उतनी ही अनिवार्य है जितना कि भोजन। खाते समय हम अपने-आप लंबे सांस लेते हैं और फेफड़ोंको अधिक हवा मिल जाती है और कुछ हवा हम भोजनके साथ पेटमें भी निगल लेते हैं। इस दृष्टिसे यह विचार अनावश्यक नहीं है कि वह हवा अच्छी है या खराब। यदि मौसम अनुकूल हो तो कमरेकी अपेक्षा बाहर दालानमें खाना अच्छा है। कमरेमें ही खाना हो तो कमरा हवादार और प्रकाशयुक्त होना चाहिए, उस समय सब खिड़कियां खुली होनी चाहिए। यहं उन बीमारियोंके लिए

चित्र ५३—पार्श्व और अग्र-संचय

शरीर—सामान्य, सिर—ऊपरसे अधिक चौड़ा, मस्तक—आगे निकला हुआ, आंखें—चमकीली, नाक—सामान्य, मुख—सामान्य ।

और भी आवश्यक है, जिनकी घटी हुई जीवनी-शक्तिको बढ़ाना हो।

हम कब खायें ?

इसपर जरा विस्तृत विचार करनेकी आवश्यकता है। यों तो यही कहा जायगा कि जब भूख लगे तब खायें, लेकिन यह तो हमारे वशकी बात है कि हम अपनी भूखका वक्त बदल लें। बहुत लोग ऐसा अप्राकृतिक जीवन विताते हैं कि भूख उन्हें गलत समयोंपर लगती है, लेकिन वह वास्तविक भूख नहीं होती। पशुओंको देखनेसे हमें मालूम होता है कि उनमें प्रायः सभीको सुबह पूरी भूख लगती है और उस समय वे अपनी पूरी खुराक लेते हैं। इसका एक दृढ़ कारण भी है, जो सूर्यसे सम्बन्ध रखता है। दिनके दो हिस्से होते हैं—प्रेरक और स्तब्धक (Animating and Tranquillising)—चढ़ाव और उतारके (पूर्वाह्ण और अपराह्ण)। चढावका समय सूर्यके चढ़नेके साथ शुरू होता है, जबकि सारी सृष्टिको क्रियाशील होनेके लिए वह जाग्रत कर देता है। प्रत्येक बागवान और देहाती पौधोंपर सूर्यकी प्रातः-कालीन किरणोंके प्रभावसे परिचित होता है। जिन वृक्षोंको प्रातःकालीन धूप नहीं मिलती, उनमें फल नहीं आते या बहुत कम आते हैं। यदि सूर्यकी प्रातःकालीन किरणें पेड़के किसी खास हिस्सेपर पड़ती हैं तो हम देखते हैं कि उस हिस्सेमें विशेष फल आते हैं।

मनुष्यपर भी वृक्षोंकी भांति ही सूर्यका प्रभाव पड़ता है। कोई मनुष्य यदि प्रकृतिके नियमानुसार प्रातःकाल शीघ्र उठे और खुली हवामें घूमे तो वह मन और शरीरपर-सूर्यकी पड़नेवाली किरणोंका प्रभाव तत्काल अनुभव कर सकेगा। दोपहरको सूर्य

जब ढलने लगता है तो दिनका दूसरा हिस्सा शुरू होता है और इस हिस्सेमें आदमीकी स्फूर्ति और शक्ति कम होने लगती है। सूर्य अस्त होनेपर यानी सायंकाल, सबको विश्राम या निद्राकी विशेष इच्छा होती है। इसके विपरीत पूर्वाह्णमें शरीरमें विशेष स्फूर्तिका अनुभव होता है तथा शरीरके सब काम तेजीसे चलते हैं। शरीरकी पाचन-शक्ति भी प्रातःकाल जोरदार होती है। तीसरे पहर वह जोर बहुत कम हो जाता है और शामको तो और भी कम। इससे यह सिद्ध होता है कि हमको अपनी खुराकका अधिक हिस्सा दिनके पहले भागमें खा लेना चाहिए और दोपहरके बादके लिए बहुत थोड़ा हिस्सा खानेको बाकी रखना चाहिए, खासकर बीमार और कमजोरोंको इस नियमके पालन करनेका ख्याल रखना चाहिए।

प्रश्न होगा कि बीमारोंको तो सुबह भूख लगती ही नहीं, और बिना भूखके वे कैसे खायेंगे? प्रातःकाल भूखका अभाव इस बातका निश्चित चिह्न है कि पाचन-यंत्र बहुत ही कमजोर हो गये हैं या गलत समयपर काम करनेको मजबूर किये गए हैं। इस नये युगमें रोशनीके साधनोंने रातको दिनकी तरह काम करना संभव कर दिया है। बहुत करके यह आश्चर्यजनक उन्नति हमारे लिए घातक सिद्ध हुई है। इस नये युगमें सभ्यताकी चकाचौंधमें पड़े हुए नग़र-निवासियोंमें बहुतोंको जो नाड़ी-दौर्बल्यका रोग लगा हुआ है, उसका एक मुख्य कारण यह रातको दिन बनाना ही है। दिनमें तो हम काम करते ही हैं, रातको भी तेज रोशनीकी सुविधा हो जानेके कारण शरीर और मनको जितना आराम देना चाहिए, नहीं देते और इसके कारण, खास तौरसे, पृष्ठ-संचय बढ़ता है।

लोग शामको भोजन बहुत देरसे करते हैं। बहुतेरे तो उस वक्त करते हैं जबकि उन्हें होना चाहिए बिस्तरोंपर। इस प्रकार खाया हुआ भोजन पूरी तरह कभी पच नहीं सकता और पाचन-यंत्रोंपर वह इतना बोझ डाल देता है कि ये बेचारे सवेरे तक हल्के नहीं हो पाते हैं। इसीलिए सवेरे भूख नहीं लगती। इसके सिवा, पेट भरा होनेके कारण रातको शरीरको वास्तविक आराम भी नहीं मिलता। अनपचा भोजन शरीरको काममें जोते रहता है और नतीजा यह होता है कि सवेरे स्फूर्तिके बजाय सुस्ती रहती है।

अपनी इन आदतोंको दुरुस्त करनेमें थोड़ी-सी दृढ़ इच्छाकी जरूरत है। बीमारोंको चाहिए कि यदि वे आराम होना चाहते हों तो वे इस प्रकार ठीक समयसे भोजन करके अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करें।

एक दिन रातको, बिना खाये सो जाइये या बहुत ही कम खाकर सोइये और देखिये, दूसरे दिन सुबह जरूर भूख लगेगी। निस्सन्देह ऐसा करनेके लिए अपने सारे ढंगोंमें परिवर्तन करनेकी जरूरत होगी। बहुतेरोंको तो जल्दी बिस्तरोंपर नींद लेनेमें कठिनाई होगी, पर, वास्तवमें तो, यह एक आदतकी बात है। तब सुबह उठनेमें कोई थकान नहीं रहेगी और शाम को भी जल्दी सोनेकी इच्छा हुआ करेगी और शरीर शीघ्र ही इसकी मांग करने लगेगा, इतना शीघ्र कि जिसकी हम उम्मीद भी नहीं कर सकते।

हमको अपना सारा जरूरी काम पूर्वाह्णमें निबटा लेना चाहिए, मनुष्य-जातिके लिए सबसे आवश्यक काम—गर्भाधानका भी यही उपयुक्त समय होता है। इस समय गर्भ-धारणकी अधिक संभावना रहेगी और उससे संतान भी अच्छी होगी। जब हम समझते हैं कि अच्छी और स्वस्थ संतान पैदा

करना मनुष्य-जातिके लिए बहुत आवश्यक है तब हमको चाहिए कि उसके लिए अच्छी-से-अच्छी स्थितिका उपयोग करें। प्रायः देखा गया है कि जिन मनुष्योंने अपनेको नपुंसक मान लिया था, इस कारण कि अपराह्णमें उनके शरीरमें गर्भाधानकी शक्ति नहीं रही थी, उन्होंने देखा कि पूर्वाह्णमें सामान्यतः उनमें वह ताकत रही है।

इन दोनों पूर्वाह्ण और अपराह्णका वास्तविक अन्तर यहां स्पष्ट दिखाई देता है। लेकिन मनुष्योंको यों भी मैं रातके संगमसे बचनेकी सलाह दूंगा। कारण, उस समयका संगम शरीरको अशक्त बनाता है। दिनकी मेहनतसे शरीरमें थकान, चिंता और मानसिक श्रमके कारण नींद खोकर शरीरको क्षीण करनेवाली क्रिया, जान-बूझकर शरीरको हानि पहुंचानेके समान है। आगे रह जानेवाले गर्भपर भी बुरा असर पड़ता है। यों गर्भपर असर तो बहुत बातोंका पड़ता है, जैसे, यदि माता या पिता संगमके समय नशेकी हालतमें हुए तो उस दशामें रहे हुए गर्भसे पैदा होनेवाला बच्चा प्रायः मंदबुद्धि होगा, नपुंसक भी हो सकता है।

हमें अपने जीवनको इस प्रकार नियमित करना चाहिए कि हम अपने अधिक आवश्यक कर्त्तव्य पूर्वाह्णमें पूरे करें। मुख्य भोजन उसी कालमें ग्रहण करें। अपराह्णमें कामकी बागडोर ढीली करते जायं और शामके बाद जल्दी सो जायं। तीव्र रोगोंका जोर अपराह्णमें ही अधिक होता है। ज्वर प्रायः अपराह्णमें बढ़ता है, क्योंकि उस समय शरीरकी प्रतिरोध-क्षमता कम हो जाती है।

दिनकी भांति ही सालके भी स्फूर्ति-स्थैर्य-भेदसे दोष

सबमें माने गए हैं। पहला काल[1] कर्क संक्रान्ति लगभग २१ जून है। इन दिनोंमें लोगोंमें सजीवता रहती है। अनेक देशोंमें इस ऋतुमें विशेष त्योहार मनाये जाते हैं। जाड़ेके दिनोंमें लगभग २२ दिसम्वरसे, कड़ी सर्दी पड़नेपर भी, लोगोंमें उल्लास रहता है। वही वसंत ऋतुका समय होता है। प्रकृतिमें चारों ओर उसका प्रभाव प्रकट रहता है। पौधोंपर तो उसका प्रभाव सर्वत्र हर कहीं देखा जा सकता है। विसर्ग-कालकी (शरद् ऋतु) काटी हुई लकड़ी ज्यादा टिकाऊ रहनी है। इसके विपरीत, आदान-कालकी (फरवरीके बाद) लकड़ी शीघ्र घुन जाती है। विसर्ग-कालमें चारों ओर प्रकृतिमें स्फूर्तिके चिन्ह दिखाई देते हैं। पशुओंमें उस समय सजीवता और क्रिया-शीलता बढ़ जाती है। यही उनका गर्भधारण-काल भी होता है। पौधे भी इस समय तेजीसे उगते और बढ़ते हैं। विसर्ग-काल उपज और वृद्धिका समय है। विसर्ग-कालमें फूल भी भांति-भांतिकी गंध बिखेरते हैं।

---

१. आयुर्वेद में भी वर्ष के दो काल माने गए हैं। कहा गया है :

मासैर्द्विसंख्यैर्माघाद्यैः क्रमात् षड् ऋतवः स्मृताः।
शिशिरोथ वसंतश्च ग्रीष्मवर्षाशरद्धिमाः ॥

माघसे आरम्भ करके पौषतक दो-दो महीने की छः ऋतुएं (शिशिर, वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद और हेमन्त) होती हैं।

शिशिराद्यास्त्रिभिस्तैस्तु विद्यादयनमुत्तरं
आदानं च तदादत्ते नृणां प्रतिदिनं बलम्

इनमें पहली (शिशिरादि) तीन ऋतुओंमें सूर्य उत्तरायण होता है, और वह आदान-काल कहलाता है। कारण, उस समय सूर्य मनुष्यों का बल प्रतिदिन खींचता है। बाद की वर्षा, शरद् और हेमन्त, इन तीन ऋतुओं में सूर्य दक्षिणायन होता है, यह विसर्ग-काल कहलाता है। इसमें सूर्य प्राणिमात्र को बल देता है।

वर्षादयो विसर्गश्च यद्बलं विसृजत्ययम्।

कुछ पौधे—जैसे गुलाब वगैरह ग्रीष्म और शरद्में (आदान-कालमें) वैसे सुन्दर फूल नहीं देते। वसंत और ग्रीष्मके आरभमें—विसर्ग-कालमें एक बार सूर्यके अपनी पूरी ऊंचाईपर पहुंचकर ढलने लगनेपर आदान-काल शुरू होता है। पशुओंकी चंचलता कम होने लगती है। वनस्पति-जगतमें वृद्धि रुक जाती है। उस समय तो सिर्फ उन्हीं फलोंके पकनेका काम होता है, जो विसर्ग-कालमें लगे, बढ़े थे। विसर्ग-कालकी अपेक्षा आदान-कालमें महामारियों के फैलनेकी अधिक संभावना रहती है। जैसाकि कहा जा चुका है, अपराह्नमें ज्वर बढ़ता है। कारण, शरीरकी प्रतिरोध-क्षमता उस समय कम हो जाती है। आदान-कालमें प्राकृतिक स्थितिमें रहे पशुजोंकी क्षुधा कम हो जाती है। जाड़ा आनेपर वह इतनी घट जाती है कि उस समय उन्हें प्राय: जो थोड़ी-बहुत खुराक मिल जाती है, वही उनके शरीर-पोषणके लिए काफी हो जाती है। आदान-कालमें पाचनशक्ति शनै:-शनै: कम हो जाती है। मनुष्योंको भी उस समय खुराक घटा लेनी चाहिए। अत: जाड़ेमें उपवास करना उपयुक्त है, पर दुर्भाग्यवश हमारा आचरण इसके बिल्कुल विपरीत होता है। जाड़ेमें खूब तर माल खाये जाते हैं। डाक्टर-वैद्य भी इस ऋतुमें खूब खानेकी सलाह देते हैं, जिससे कि हम जाड़ेसे लड़ सकें। इस गलतीका नतीजा तो बुरा होता ही है। प्राकृतिक स्थिति में रहनेवाले प्राणियोंको देखकर हमारी आंखें खुलनी चाहिए। पशुपालक और वन-विभागवाले यह खूब जानते हैं कि जाड़ेमें पशुओंको यदि तन्दुरुस्त रखना है तो उन्हें अधिक खुराक नहीं मिलनी चाहिए। उष्णकटिबंध प्रदेशोंमें, जहां सूर्यकी अवस्था में बहुत कम परिवर्तन होता है, चन्द्रमाका प्रभाव प्रबल होता है। वहां

विसर्ग-काल आदान-कालसे महीनेमें दो बार बदलता है। नित्य-का परिवर्तन तो वहां भी प्राकृतिक रूपसे वैसा ही होता है, जैसा हमारे यहां होता है। उष्ण प्रदेशमें देखा गया है कि शुक्लपक्षमें काटी गई लकड़ियां अच्छी नहीं रहीं, जबकि कृष्णपक्षमें काटी गई ठीक रहीं। इसी प्रकार यहां जो बातें वर्षके संबंधमें देखी जाती हैं, वे ही उन प्रदेशोंमें, महीनेके संबंधमें देख सकते हैं।

इस स्थितिकी व्याख्या क्या है? मेरे ध्यानमें जो आई है, वह कहता हूं। वह कहांतक ठीक,बेठीक है, यह नहीं कहा जा सकता। विसर्ग और आदान-कालका भी वही कारण होना चाहिए, जो दिन और रात तथा गर्मी और जाड़ेका होता है। इनका संबंध सूर्य और पृथ्वीकी चालसे है। हममेंसे अधिकांश माने बैठे हैं कि स्वयं सूर्यसे हमें प्रकाश और ताप मिलता है। मेरी रायमें यह धारणा गलत है।

संभवतः सूर्यमें दिखाई देनेवाला तेज पृथ्वीकी गतिसे पैदा होनेवाले विद्युतका ही परिणाम है। पृथ्वीकी गतिसे पैदा होने-वाले सूर्यके भीतरके तेजके हमारी ओर आनेपर उसकी किरणके भी उसमें शामिल होनेकी कल्पनाकी जा सकती है। घूमती हुई पृथ्वीके पृष्ठ-भागका इन किरणोंसे घर्षण होनेपर ताप और प्रकाश पैदा होकर उसके चारों ओर फैलता है। यदि प्रकाश और ताप सचमुच सूर्यसे ही आते होते तो फिर हमें ऊंचाई पर (अधिक-उच्च प्रदेशमें) सूर्यका ताप और प्रकाश कम क्यों लगता है? हवाई जहाज का अनुभव भी यही कहता है। ताप और प्रकाशकी किरणें सूर्यसे ही आती होतीं तो उनका परिणाम चारों ओर एक-सा होना चाहिए था, यानी तापका परिमाण मैदानमें तथा पहाड़की चोटीपर समान ही होना चाहिए था। कहा जा सकता है कि उच्चप्रदेशमें हवा ठंडी होनेके कारण तापका पता नहीं चलता।

तो पूछा जा सकता है कि पृथ्वीपरके तापसे, यदि पृथ्वीसे संबंधित हवा तपती हैं, तो उच्चप्रदेश की हवापर सूर्यकी किरणों द्वारा पड़ने वाले प्रभावसे वह हवा तप्त क्यों नहीं होगी ? यह माननेपर कि ताप और प्रकाश पृथ्वीके भ्रमणके कारण पैदा होते हैं, यह साफ हो जाता है कि जहां पृथ्वीकी गति और उसके कारण होनेवाला घर्षण अधिक तीव्र होगा, वहां प्रकाश और तापका अधिक होना भी अनिवार्य है। वह स्थान भूमध्यरेखाके निकटका प्रदेश अथवा उष्णकटिबंध है। यह तो हमें मालूम ही है कि इस प्रदेशमें ताप और प्रकाशकी अधिकता होती है। ध्रुवके निकटस्थ प्रदेशमें पृथ्वीकी गति और उसका सूर्य किरणोंसे घर्षण करीब-करीब नहीं-सा ही होता है। इसलिए वहां अत्यन्त सर्दी और निष्क्रिय स्थिति है। ध्रुवप्रदेशमें यदि पड़ोसके प्रदेशसे गरम हवा न आवे तो वहां और भी अधिक ठंडक होगी। इस आधारको सामने रखकर यह समझा जा सकता है कि पृथ्वीपर उष्ण-कटिबंध एक और समशीतोष्ण कटिबंध तथा शीत कटिबंध दो-दो क्यों हैं ?

उपर्युक्त वर्णनको समझानेके लिए नीचे दो आकृतियां दी जा रही हैं :
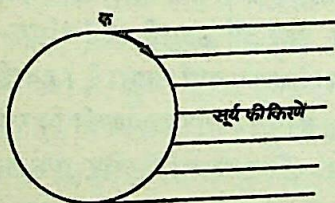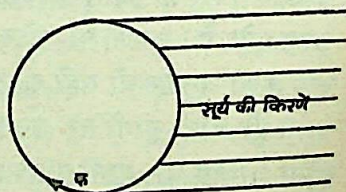
चित्र ५४ चित्र ५५

५४ और ५५ आकृतियां पृथ्वीकी हैं। इसमें तीर पृथ्वीकी गतिकी दिशा बतला रहा है। 'क' वह स्थान है, जहांसे खड़े होकर हम देख रहे हैं। सूर्यकी किरणें समानांतर रेखामें पृथ्वीकी ओर निरंतर जा रही हैं। पर पृथ्वी एक गतिमें नहीं रहती, बराबर गतिमान रहती है। इस कारण उसके पृष्ठ-भागका क्षण-क्षणपर भिन्न किरणोंसे मुक़ाबला होता रहता है। ५४वें चित्रमें दर्शक जब 'क' स्थान पर दिखाई देता होता है, तब उसके सामने तुरंत सूर्य उदय होता है और ५५वीं आकृतिमें 'क' पर रहनेवाले मनुष्यको सूर्य अस्त होता दिखाई देता है।

इन दोनों आकृतियोंसे यह समझ सकते हैं कि चुंबकीय किरणोंके साथका प्रातःकालीन घर्षण अधिक तीक्ष्ण होगा, बजाय तीसरे पहरके, जबकि वे हमारी पीठ पर पड़ती हैं। इसीलिए हमपर पड़नेवाली प्रातःकालीन किरणें प्रखर प्रतीत होंगी।

हम इस क्रियाको एक छुरीपर धार करनेवाला पत्थर सामने रखकर अच्छी तरह समझ सकते हैं। यदि हम तेज किये जानेवाले चाकूके फलको घूमती हुई सान (Grindstone) की विपरीत दिशामें रखते हैं तो घूमनेवाले पत्थरका घर्षण बढ़ जायगा, पर उस फलको घूमनेवाली दिशामें रखनेसे घर्षण उतना जोरदार नहीं होगा। गतिकी दृष्टिसे पृथ्वीकी तुलना एक बहुत बड़े डाइनमो से की जा सकती है, जिसका चक्कर खानेवाला हिस्सा उन तथाकथित विद्युत् विकिरण के विरुद्ध रगड़ खाता है, जो कामके लिए विद्युत् परिचालन करती हैं।

कोई यह भी कह सकता है कि प्रायः तीसरे पहरका ताप प्रातःकाल की अपेक्षा तेज होता है। इसका कारण सिर्फ यह है कि पैदा हुई गर्मीके कारण वह गर्मी (सुबहवाली गर्मी)

सुरक्षित रहती है और बढ़ती रहती है। पर तेज हवाके अभावमें सबेरेकी अपेक्षा तीसरे पहरकी गर्मीकी वृद्धि कम होती है। तेज हवा गरम या ठंडे झोंके दूसरे क्षेत्रोंसे लाकर हालतको बदल सकती है। इसलिए जांच शांत स्थिति—आंधी या तेज हवा न होने की स्थिति में—होनी चाहिए। पृथ्वीकी परिभ्रमण-शक्तिका प्रभाव भी हमपर पड़ता है। विसर्ग-कालमें सूर्य की किरणें आदान-कालकी अपेक्षा अधिक प्रभाव डालती हैं। हमें काम करने की स्फूर्ति देती हैं। हमें अपना जीवन इसीके अनुसार व्यवस्थित करना चाहिए। विसर्ग-कालका प्रभाव कुछ काल तक बना रहता है। इसलिए तीसरे पहर तक हम शक्तिकी कमीका अनुभव धीरे-धीरे ही कर पाते हैं। यदि हम अपनी प्रातःकालिक कार्य-शक्ति की तुलना तीसरे पहरकी कार्य-शक्ति से करें तो हमें अवश्य एक विशेष अन्तर मिलेगा।

प्रातःकालिक कार्यशक्तिका कारण सिर्फ रातको अच्छी नींद आ जाना ही नहीं है। यदि वही कारण होता तब तो दोपहरको अच्छी नींद ले लेनेके बाद भी वही प्रभाव होना चाहिए था। पर ऐसा होता नहीं है। मेरी रायमें इसका कारण वही शक्ति है, जो प्रकाश और ताप देती है। अतः कृत्रिम उपायोंसे प्रकृतिके अपरिवर्त्तनीय नियमों केखिलाफ जूझना भारी अज्ञान है।

मैं एक बार फिर कहना चाहता हूं कि ऊपर जो कहा गया है, वह मेरे अपने विचार हैं। यहां तो सिर्फ यह दिखानेको प्रकट किये गए हैं कि वर्ष और दिनके जो विसर्ग और आदान-काल हैं, उनका रहस्य क्या है। आशा है, पाठक इसपर अच्छी तरह विचार करनेके बाद ही इन्हें स्वीकार या अस्वीकार करेंगे।

: ६ :

मुखाकृति-विज्ञान और मस्तिष्क-विद्या का संबंध

मस्तिष्क-विद्या (Phrenology) का संबंध भी मनुष्यके सिरको आकृतिसे है। इसलिए इसके और मुखाकृति-विज्ञानके संबंधमें मैं यहां कुछ शब्द कहना चाहता हूं। मस्तिष्क-विद्या यह मानकर चलती है कि मस्तिष्कका प्रत्येक भाग किसी विशेष मानसिक शक्तिका स्थान है। अतः यदि मस्तिष्कका कोई भाग अस्वाभाविक रूपसे बड़ा हो तो उस हिस्सेमें रहनेवाली शक्ति भी उतनी ही बढ़ी हुई मानी जाती है।

मैं यहां इस बहसमें नहीं पड़ूंगा कि मस्तिष्क-विद्याकी प्रत्येक मान्यता तथ्यपर अवलंबित है या नहीं, पर यह बिना हिचकके कहा जा सकता है कि मस्तिष्ककी शक्लके साथ मानसिक शक्तिका संबंध रहता है। सामान्यतः मस्तिष्ककी बनावट ऐसी होती है कि कोई एक शक्ति दूसरी शक्तिसे बढ़ने नहीं पाती। इस नियमका भंग तभी होता है कि जब मस्तिष्क-में दोष-संचय हो जाता है। सदैव किसी प्रकार के दोष-संचयके परिणामस्वरूप उस भागमें उत्तेजना होती है, जैसी कि कुछ अकाल प्रौढ़ बच्चोंमें देखी जाती है, पर आगे चलकर—बड़े होने पर—दोष-संचयके परिणामस्वरूप यह सक्रियता जाती रहती है।

एक विशेष ध्यान देनेकी बात है कि जिनमें अग्र-संचय होता है, उनमें सामान्यतः परोपकार, श्रद्धा, विश्वास और आशा इत्यादि गुण विशेष पाये जाते हैं। मस्तिष्क-विद्याके मतके अनुसार

इन गुणोंका स्थान मस्तिष्कका अग्रभाग होता है। जिन व्यक्तियोंमें सारा संचय सामनेकी ओर होता है, वे बड़े चतुर और मिलनसार होते हैं। पृष्ठ-संचयवाले व्यक्ति लोगोंमें ज्यादा मिलना-जुलना नापसन्द करते हैं। न वे ऐसे पेशे ही पसंद करते हैं, जिनमें उन्हें दूसरोंके साथ अधिक सामाजिक सम्पर्क रखना पड़े। यदि विवश होकर उन्हें ऐसे पेशेमें पड़ना ही पड़े तो वे हताश ही होते हैं।

मानस-वैज्ञानिक किसी-किसीमें एकतरफी मानसिक सक्रियता देखते हैं, पर वह इसका कारण नहीं समझ पाते। मुखाकृति-विज्ञान इस संबंधमें उन्हें थोड़ा-बहुत बतला सकता है। मस्तिष्कका असमान विकास किसी प्रकारके दोष-संचयका परिणाम होता है। इससे हम इस परिणामपर पहुंचते हैं कि यह मानसिक असंतुलन संचयको मिटाकर पुनः संतुलित किया जा सकता है। कभी-कभी असमान मानसिक विकासके कारण मनुष्यको बड़ी भयंकर—जैसे, क्रोध, निराशा, आत्महत्या-प्रवृत्ति, अनुत्साह आदि—मनोवृत्तियां घेर लेती हैं। इनके लिए माना जाता है कि ये तो इस युगकी देन हैं और बड़े अफसोसके साथ कहा जाता है कि बच्चे भी इसके प्रभावसे नहीं बचते। लेकिन यह खयाल गलत है, इसका कारण तो लोगोंकी सर्वत्र फैली हुई शारीरिक रुग्णतामें छिपा हुआ है। दुर्भाग्यसे जिन लोगोंपर समाजके नियमनका दायित्व है और जिनकी बात लोग मानते हैं, उन्होंने इस विषयपर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया है।

: ७ :

उपसंहार

वहुतेरे पाठक इस पुस्तकमें दिये गए स्पष्टीकरणोंकी संपूर्ण वैज्ञानिकतामें संदेह कर सकते हैं। लेकिन मेरा उद्देश्य तो असली बातोंको सबके समझमें आने लायक सीधे-सादे शब्दोंमें लिखनामात्र है। इसका यह मतलब नहीं कि यह विषय ही अवैज्ञानिक है।

वास्तवमें विज्ञान उन अनुभवोंके सिवा और है भी क्या, जिन्हें मनुष्यने स्पष्ट सिद्धान्तोंके आधारपर नियमबद्ध किया है। पर हर मनुष्य स्वयं अनुभव करनेको स्वतंत्र है, वह किसी खास बिरादरीसे संबंधित हो या नहीं।

हम यह क्यों देखें कि उसने विज्ञानकी इस या उस शाखाकी शिक्षा पाई है या नहीं? बहुत बार शौकीन और सामान्यजनोंने विशेषज्ञोंकी अपेक्षा विभिन्न और नये तरीकोंसे सत्यकी खोज की है। दूसरी ओर पेशेवर लोग तो एक घिसी-पिटी लकीरपर चलनेके आदी होते हैं। यह ग्रंथ मेरे तीस-सालके अनुभवोंका परिणाम है, जो हजारों लोगोंपर सही साबित हो चुके हैं। मैं यह कदापि नहीं कहता कि मैंने पूर्णता प्राप्त करली है, पर सच्चे अन्तःकरणसे मैं यह कह सकता हूं कि इस ग्रंथमें लिखी गई बातें मेरी कसौटीपर खरी उतरी हैं और मैंने इनकी काफी जांचके बाद ही इन्हें प्रकट किया है।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।
आगत क्रमांक........1920...
दिनांक.......................

परिए
यह व

मण्डल का स्वास्थ्य और
प्राकृतिक चिकित्सा-संबंधी साहित्य

□

१. कब्ज
२. प्राकृतिक चिकित्सा : क्या व कैसे ?
३. सरल योगासन
४. तन्दुरुस्ती हजार नियामत
५. निरोग होने का सच्चा उपाय
६. तन्दुरुस्त रहने के उपाय
७. चंगा करे खुदाई
८. वैज्ञानिक मालिश
९. आकृति से रोग की पहचान

□□